आत्मा परियोजना अन्तर्गत

मरूक्षेत्र में पशु पालन प्रशिक्षण

जनवरी, 2014

प्रशिक्षण निदेशक : डॉ. एन.वी. पाटिल

प्रशिक्षण समन्वयक : डॉ. एफ.सी. टुटेजा एवं डॉ. सज्जन सिंह

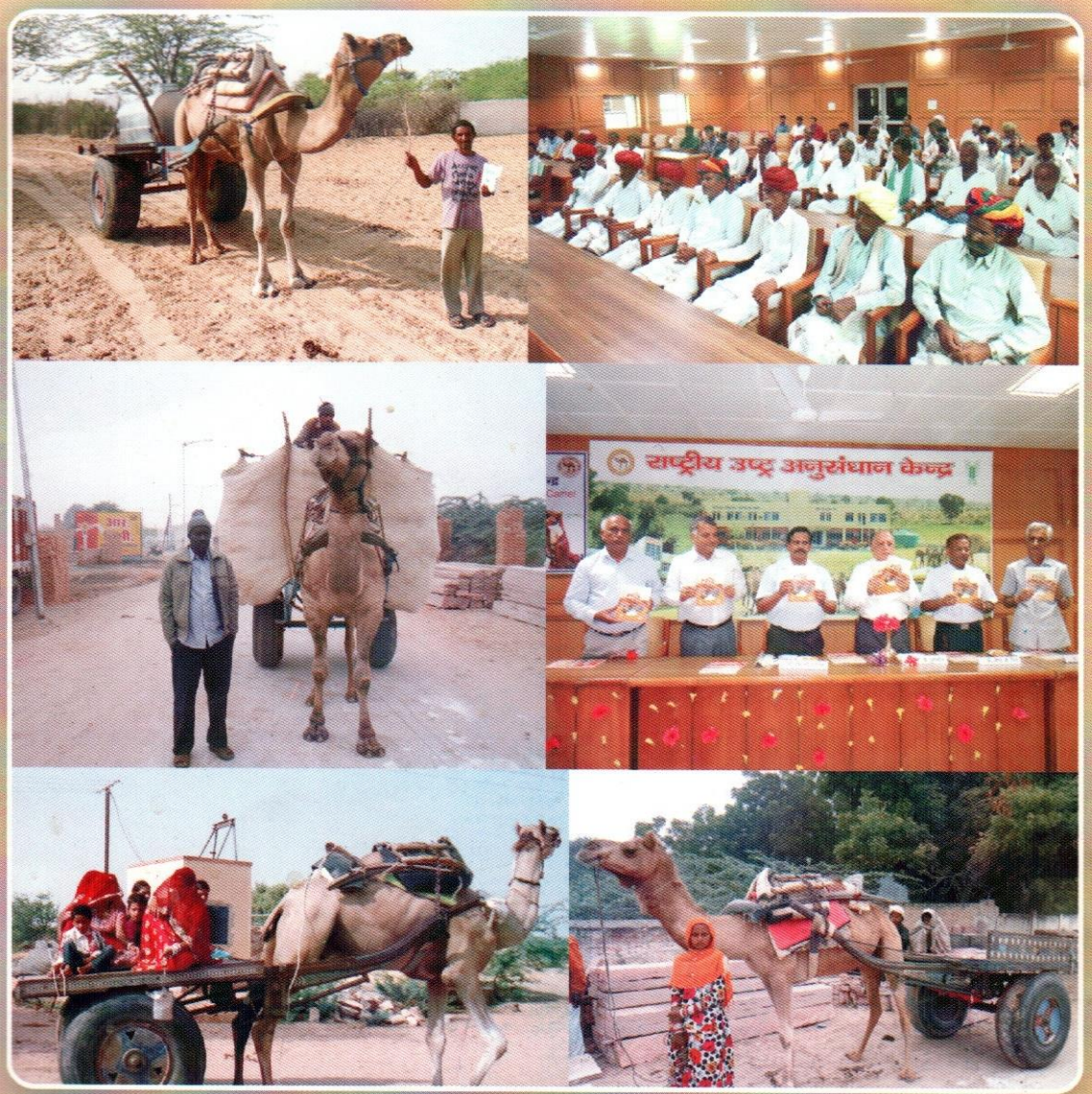

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

Library

कृषि प्रौद्योगिकी प्रबन्धन अभिकरण (आत्मा)

Agricultural Technology Management Agency (ATMA)

मरूक्षेत्र में पशुपालन प्रशिक्षण

प्रशिक्षण निदेशक
डॉ.एन.वी.पाटिल

प्रशिक्षण समन्वयक
डॉ.एफ.सी.टुटेजा एवं डॉ.सज्जन सिंह

संपादक मण्डल
डॉ.एफ.सी.टुटेजा
डॉ.सज्जन सिंह
रामदयाल रैगर
नेमीचन्द बारासा
डॉ.राकेश कुमार पूनियाँ

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

प्रकाशन वर्ष - 2014

संरक्षण एवं प्रकाशक
डॉ.नितीन वसन्तराव पाटिल
निदेशक : राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

मुद्रक :
सूर्य प्रकाशन मन्दिर,
दाऊजी रोड़ (नेहरू मार्ग)
बीकानेर।
मो. 09829280717

सौजन्य से
संयुक्त निदेशक, पशु पालन विभाग, हनुमानगढ़ एवं
संयुक्त निदेशक, पशु पालन विभाग, झुन्झुनूं, राजस्थान

विषय-सूची

1. राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र : एक परिचय	डॉ. नितीन वसन्तराव पाटिल	5
2. उष्ट्र उत्पादन एवं प्रजनन	डॉ. शरत्चन्द्र मेहता, डॉ. सज्जन सिंह, डॉ. बिहारीलाल चिरानीया, डॉ. उमेशकुमार बिस्सा	7
3. ऊँटनियों में थनैला रोग के कारण, बचाव व उपचार	डॉ. फतेहचन्द टुटेजा, डॉ. सज्जन सिंह एवं नेमीचन्द बारासा	11
4. भारत मे उष्ट्र दुग्ध उत्पादों की सम्भावनाएं व उपयोगिता	डॉ. राघवेन्द्र सिंह, नन्दकिशोर, डॉ. राकेश कुमार पूनियाँ	16
5. शुष्क क्षेत्रों में चारागाह विकास एवं विभिन्न कृषि पद्धतियों द्वारा चारा उत्पादन	डॉ. एन.डी. यादव एवं डॉ. एम एल सोनी	19
6. उष्ट्र की विभिन्न शारीरिक अवस्थाओं के अनुरूप प्रबन्धन	डॉ. सज्जन सिंह, डॉ. फतेह चन्द टुटेजा व डॉ. एन.वी.पाटिल	26
7. ऊँटों में प्रजनन सम्बन्धित महत्वपूर्ण जानकारियाँ	डॉ. सुमन्त व्यास	29
8. ऊँटों के प्रमुख परजीवी रोग और उनके रोकथाम के उपाय	डॉ. संजय कुमार और डॉ. एस. के. घोरुई .	31
9. अधिक उत्पादन के लिए भेड़ प्रबन्धन	डॉ. राजेश कुमार सावल	34
10 ऊँटों में होने वाली महत्वपूर्ण संक्रामक बीमारियाँ	डॉ. शिरीष डी. नारनवरे	41
11. ऊँट पालन एवं प्रजनन प्रबन्धन	डॉ. उमेश कुमार बिस्सा एवं डॉ. शरत चन्द्र मेहता	43
12. अश्व रख-रखाव एवं प्रबन्धन	डॉ. राम अवतार लेघा, डॉ. रमेश कुमार देदड़ एवं डॉ. यशपाल	46

13. सन्तुलित आहार द्वारा ऊँटों का वैज्ञानिक पोषण प्रबंधन करें	डॉ. अशोक कुमार नागपाल	51
14. शुष्क क्षेत्रों के पशु उत्पादन सुधार में आवास व्यवस्था की भूमिका	डॉ.ए.के.पटेल	56
15. चेचक : ऊँटों में एक संक्रामक रोग	डॉ. नागराजन, शैलेश कुमार स्वामी, डॉ. श्यामसिंह दहिया, गौरव शर्मा एवं पंकज सिंह	60
16. ऊँटों में मूमड़ी रोग	डॉ. श्यामसिंह दहिया, डॉ.जी.नागराजन, पंकजसिंह, शैलेशकुमार स्वामी एवं गौरव शर्मा	61
17. उष्ट्र दुग्ध उत्पादन हेतु पोषण	डॉ. निर्मला सैनी	62
18. ऊँटों की आवास व्यवस्था एवं नवजात बच्चों व ग्याभिन ऊँटनियों की उचित देखभाल	डॉ.बी.एल.चिरानियाँ एवं राधाकृष्ण	64
19. राजस्थान में कृषि विज्ञान केन्द्र एवं इनकी उपयोगिता	रामदयाल रैगर एवम् दिनेश मुंजाल	66
20. अश्वों की मुख्य बीमारियाँ - लक्षण, निदान एवं उपचार	डॉ. जीतेन्द्र सिंह	69
21. टोरडियों में ठीकरिया (स्किन कैंडीडियेसिस)	डॉ. एफ. सी. टूटेजा, डॉ. काशीनाथ, डॉ. बी. एल. चिरानिया एवं डॉ. एन. वी. पाटिल	73
22. उष्ट्र टोलों का समुचित प्रबन्धन	सुचित्रा सेना एवं फराद फरीदी	78
23. मरूक्षेत्र में चारे हेतु उपयोगी फसलें	रामकुमार एवं महेन्द्र कुमार राव	79
24. टोरड़ियों में होने वाली प्रमुख बीमारियां एवं बचाव के उपाय	डॉ. काशी नाथ, डॉ. नरेन्द्र शर्मा एवं डॉ. यू.के. बिस्सा	80
25. कृषि कार्यों में कम्प्यूटर का उपयोग	दिनेश मुंजाल व राम दयाल रैगर	82

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र : एक परिचय

डॉ. नितीन वसन्तराव पाटिल
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

मरु–प्रदेश की संस्कृति का प्रतीक 'ऊँट' अपनी अनूठी काया के कारण संपूर्ण विश्व में चर्चित है। अपनी विचित्र काया के कारण यह प्राणी कौतुहल का विषय भी है। लोक संस्कृति में तो इसकी इतनी पैठ है कि इसे लगभग 100 से अधिक नामों से पुकारा जाता है, कई लोक गीत, प्रसंगों में इसके गुणों का बखान किया गया है। यानी सीधे लफ्जों में कहा जाए तो यह इस प्रदेश की 'रीढ़ की हड्डी' माना जा सकता है जो प्रदेश की विषम भौगोलिक परिस्थितियाँ का वरण कर मानव जाति के हितार्थ सतत रूप से कार्य कर रहा है। विकास की इसी महत्वपूर्ण यात्रा को ध्यान में रखते भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली द्वारा 5 जुलाई, 1984 को राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र की स्थापना की गई जो कि अपने आप में एक अनूठा केन्द्र माना जाता है। परिषद द्वारा इस केन्द्र की स्थापना महत्वपूर्ण उद्देश्यों के साथ की गई थी तथा अपनी स्थापना से लेकर केन्द्र निरन्तर उष्ट्र प्रजाति के संरक्षण व विकास हेतु निम्नलिखित अधिदेशों पर कार्य कर रहा है जिन्हें जान लेना ऊँट पालकों एवं किसान भाइयों के लिए जरूरी भी है :–

1. ऊँट विकास हेतु बुनियादी और व्यावहारिक अनुसंधान करना।
2. ऊँट सम्बन्धी सभी संस्थाओं हेतु नेतृत्व और अनुसंधान समन्वय तथा प्रशिक्षण प्रदान करना तथा राष्ट्रीय स्तर पर जानकारी का भंडारण करना।
3. ऊँट अनुसंधान तथा विकास के लिए राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के साथ सहयोग करना।

केन्द्र ने गत 29 वर्षों में अपनी उष्ट्र अनुसंधान के क्षेत्र में विश्व स्तर पर अपनी उपयोगिता सिद्ध की है तथा यह केन्द्र उष्ट्र से जुड़ी प्रत्येक समस्या को भी गंभीरता से लेता है तथा केन्द्र के वैज्ञानिक उसके निवारण हेतु दत्तचित होकर कार्य करते हैं। केन्द्र द्वारा उष्ट्र जैव ऊर्जा के मानकीकरण, गुणात्मक एवं संख्यात्मक आनुवांशिक कारकों का अध्ययन, उष्ट्र जनन व पोषण अनुसंधान तथा कृत्रिम गर्भाधान तकनीकी का विकास, उष्ट्र रोगों की पहचान व निदान, उष्ट्र पालन के लिए प्रबन्धन प्रणाली विकसित करना, उष्ट्र कार्यात्मक दुग्ध उत्पादों के विकास पर अनुसंधान, विभिन्न ऊँट नस्लों के गुणों की पहचान एवं संरक्षण कार्य तथा स्थानीय उपलब्ध चारे व भोज्य पदार्थों से उच्च गुणवत्ता का सस्ता एवं पौष्टिक आहार तैयार करने की दिशा में महत्वपूर्ण अनुसंधान कार्य निरन्तर जारी है।

इस केन्द्र ने उष्ट्र कार्यों जैसे सवारी, दौड़, हल एवं गाड़े खींचने में ऊँटों की कार्यक्षमता का मूल्यांकन किया है। ऊँटों के लिए प्रयुक्त खेती यंत्रों व परिवहन हेतु प्रयोग में आने वाले गाड़े में आवश्यक सुधार लाकर इनकी कार्यक्षमता एवं उपयोगिता को बढ़ाया है। केन्द्र ने पारंपरिक उष्ट्र गाड़े में रोशनी की व्यवस्था सुझाई है ताकि रात्रि के समय होने वाली दुर्घटनाओं से बचा जा सके।

कृत्रिम गर्भाधान, भ्रूण प्रत्यारोपण व जनन हार्मोनों के प्रभावों पर अध्ययन हुआ है। ऊँटों के गर्भकाल लम्बा होने व कृत्रिम गर्भाधान में कठिनाई व मौसम विशेष में ही गर्भित होने के कारण इनकी जनन दर अन्य पालतू पशुओं से कम होती है। इस क्षेत्र में वैज्ञानिक, उष्ट्र पर हार्मोनों का प्रभाव, मौसम से प्रभावित उष्ट्र व्यवहार एवं अन्य संभावित कारकों को ध्यान में रखते हुए अनुसंधान में लगे हुए हैं। ऊँटों की जनन क्षमता में सुधार किया गया है तथा इसका वीर्य हिमीकृत करने में भी सफलता मिली है। ऊँटनी के दूध में पाए जाने वाले स्वास्थ्यवर्धक घटकों एवं इसकी विभिन्न रोगों से लड़ने की क्षमता पर विस्तृत अध्ययन किया जा रहा है।

ऊँटनी के दूध की ही बात करें तो केन्द्र इसके दूध को गाय, भैंस आदि दुधारू पशु के दूध की तरह

प्रयुक्त किए जाने की कवायद में जुटा है क्योंकि इसके दूध में आम दुधारू पशु के दूध की तरह ही विशेषताएं विद्यमान हैं। यहां तक की ऊँटनी के दूध की औषधीय उपयोगिता के कारण यह एक विशेष महत्व भी रखता है। केन्द्र ने विभिन्न वैज्ञानिक अनुसंधानों के माध्यम से इसे सिद्ध किया है। विभिन्न डेरी उत्पाद जैसे कुल्फी, चीज, सुगन्धित दूध व किण्वित दूध, गुलाब जामुन आदि विकसित किए गए हैं जिनका विपणन केन्द्र के मिल्क पार्लर के माध्यम से किया जा रहा है। इन उत्पादों को लोकप्रिय बनाने एवं बेहतर विपणन हेतु संभावनाएं तलाश की जा रही है।

ऊँटों के प्रमुख रोग विशेषकर सर्रा (तिबरसा) पर विशेष अनुसंधान किया गया है तथा इस रोग के निदान हेतु जीनोम आधारित पी.सी.आर. टेस्ट विकसित किया गया है। ऊँट के रक्त में एलिसा तकनीक द्वारा सर्रा प्रतिरक्षी एन्टीबॉडी को विश्लेषित करने की विधि का मानकीकृत किया गया है। ऊँटों में खुजली रोग के उपचार के लिए एक सस्ती व सुलभ घरेलू औषधि तैयार की गई है। केन्द्र द्वारा पिछले लगभग 2 वर्षो से उष्ट्र चल–क्लिनिक की निःशुल्क सुविधा प्रारम्भ की गई है जिसमें केन्द्र के आस–पास के गाँवों के ऊँट पालकों व किसानों के पशुओं से जुड़ी विभिन्न स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का निराकरण किया जाता है।

उष्ट्र नस्लों एवम् एक ही नस्ल में पायी जाने वाली अनुवांशिक भिन्नताओं का आकलन आणविक चिह्नकों (मार्कर) द्वारा किया गया है। ऊँट की मुख्य देशी नस्लों की पहचान उनके गुणों के आधार एवम् आणविक जैव वैज्ञानिक आर.ए.पी.डी. विधि से भी की गई हैं। तीन नस्लों में अनुवांशिक सहसंबंध का पता लगाया जा चुका है। दूध संवर्धन के लिये दो जीन श्रृंखलाएं जीन बैंक को भेजी गई है। नैनो टैक्नोलॉजी के क्षेत्र में उष्ट्र अनुसंधान के लिए विपुल संभावनाएं हैं जिनके लिए केन्द्र के प्रयास अग्रणी सिद्ध होने की आशा है।

दुग्धकाल, गर्भावधि तथा शारीरिक श्रम जैसी अवस्थाओं में ऊँट की आहार आवश्यकताओं का आकलन किया गया है। स्थानीय स्त्रोतों से उपलब्ध फसलों के सूखे अवशेषों व चारे से फीड ब्लॉक निर्मित किए गए हैं जिनकी पाचकता, उपयोगिता अन्य चारों से कहीं अधिक पायी गयी हैं। बछड़ों के लिए पेड़ की पत्तियों, गेहूं के भूसे, बुई के पत्तों, ग्वार एवं चना–भूसा से पूर्ण आहार तैयार किया गया है।

भविष्य में हम उष्ट्र नस्लों के संरक्षण, दुग्ध उत्पादन क्षमता में वृद्धि, ऊँटों की जनन क्षमता में सुधार, कृत्रिम गर्भाधान व भ्रूण प्रत्यारोपण का विकास, उष्ट्र जैव–ऊर्जा उपयोगिता, उष्ट्र पालन से सम्बन्धित समाजार्थिक व सांस्कृतिक पहलू, न्यूनतम दर से उपलब्ध होने वाले उष्ट्र आहार, उष्ट्र रोग निदान के क्षेत्र में नई जैव प्रौद्योगिकी के प्रयोग करने व मानव स्वास्थ्य में उष्ट्र दुग्ध की महती भूमिका जैसे क्षेत्रों में अपना अनुसंधान, आगे बढ़ाने का कार्य कर रहे हैं।

प्रजनन काल में केन्द्र के उन्नत नस्ल के ऊँटों द्वारा पास के गाँवों से लाई जाने वाली ऊँटनियों को प्रजनन की सुविधा निःशुल्क उपलब्ध कराई जाती है। साथ ही उन्नत नस्ल के ऊँट प्रजनन हेतु पंचायत समितियों व ऊँट पालकों को राजस्थान पशुपालन विभाग के माध्यम से निःशुल्क उपलब्ध कराये जाते हैं। ऊँट पालकों व किसानों के लिए लघु प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं। ऊँटनी के दूध के उपयोग को बढ़ावा देने के लिए, इसका दूध केन्द्र स्थित मिल्क पार्लर पर बिक्री किया जाता है। ऊँट पर जानकारी उपलब्ध कराने हेतु ऊँट संग्रहालय व सफारी की व्यवस्था उपलब्ध है। केन्द्र अपने द्वारा विकसित उष्ट्र दुग्ध उत्पादों के निर्माण संबंधी प्रशिक्षण निःशुल्क उपलब्ध करवाता है।

ऊँटों की घटती हुई संख्या व इसका दैनन्दिन कार्यों में कम होता उपयोग चिन्ता का विषय बनता जा रहा है जिससे न केवल पशु पालक समाज बल्कि हमारे वैज्ञानिक भी इसे भलीभांति जानते हैं। इसी को ध्यान में रखते हुए ऊँटों के विकास एवं संरक्षण हेतु नूतन व सामयिक प्रयास किए जा रहे हैं।

□

उष्ट्र उत्पादन एवं प्रजनन

डॉ. शरत्चन्द्र मेहता, डॉ. सज्जन सिंह, डॉ. बिहारीलाल चिरानीया, डॉ. उमेशकुमार बिस्सा
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

ऊँटों ने अपनी उत्पति से लेकर अब तक करीब 45 मिलियन वर्ष का सफर तय किया है। इस सफर के दौरान इसके आकार में काफी बदलाव आया है, कभी यह एक खरगोश के आकार का हुआ करता था, फिर कभी यह बकरी के आकार का हो गया। वर्तमान में इस परिवार के कई सदस्य हैं उनमें भारत में पाया जाने वाला ऊँट विशालतम है। समय की माँग ने न केवल इसके शारीरिक आकर में वृद्धि की एवं बनावट में परिवर्तन किया किन्तु इसका स्थान भी पूर्ण रूप से परिवर्तित हो गया हैं। ठंडे क्षेत्र में उत्पन्न हुए इस पशु की सर्वाधिक संख्या अब गर्म क्षेत्र में पाई जाती है। गर्म क्षेत्रों में इसने जहाज का कार्य किया है जिसकी जगह अब हवाई एवं पानी वाले जहाज ने ले ली है। आज से करीब 1500 वर्ष पूर्व का समय देखते तो ऊँटों का महत्वपूर्ण योगदान भारत से पाकिस्तान, अफगानिस्तान, ईरान, ईराक एवं आस–पास के क्षेत्रों में मनुष्यों ने आने जाने एवं सामान लाने–ले जाने के कार्य में रहा है। पहाड़ी क्षेत्रों में दो कुबड़ वाले ऊँट ने भारत का संपर्क चीन, मंगोलिया, किरगिस्तान, कजाकिस्तान एवं अफगानिस्तान आदि से बनाये रखा। उस वक्त भारत का शेष दुनिया से सम्पर्क साधने में एवं व्यापार करने में ऊँटों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। आजादी के बाद का इतिहास देखते है तो स्पष्ट तस्वीर समाने आती है, मानव ने अपने विकास के लिये प्रयास प्रारम्भ किये एवं मानव संख्या भी भारत वर्ष में बढ़ती गई। जनसंख्या वृद्धि के साथ–साथ आने–जाने के साधनों की जरूरत भी बढ़ी, सामान लाने–ले जाने के साधनों की जरूरत भी बढ़ी एवं उसी के साथ ऊँटों की संख्या भी बढ़ी जहाँ वर्ष 1951 में ऊँटों की संख्या 0.6 मिलियन थी वह लगातार बढ़ती हुई वर्ष 1972 में अपने श्रेष्ट पर 1.1 मिलियन हो गई हैं। प्राकृतिक संसाधनों का दोहन एवं उनका उपयोग समय एवं परिस्थिति अनुसार बदलता है एवं यही ऊँट के साथ हुआ। वर्ष 1977 तक यह 1.1 मिलियन के स्तर पर बना रहा लेकिन यांत्रिक संसाधनों के विकास एवं उपलब्धता ने इसका 35 वर्षों में पुनः आजादी पूर्व संख्या के निकट अथवा उससे भी कम संख्या में ला दिया है।

वर्ष 2007 की पशुगणना के आधार पर भारत में ऊँटों की कुल संख्या 5,16,828 हैं। राजस्थान में 421836, गुजरात में 38454, हरियाणा में 38608, उत्तरप्रदेश में 8959 एवं मध्यप्रदेश में 4456 ऊँट हैं। नस्लवार ऊँटों की संख्या का अनुमान लगायें तो सबसे कम ऊँट मेवाड़ी नस्ल के हैं इनकी अनुमानित संख्या 8,834 है। कच्छी ऊँट 29,505 है। जैसलमेरी 106867 हैं एवं बीकानेरी 306135 हैं। लद्दाख मे दो कुब्बड़ वाले ऊँटों की संख्या 141 है।

जीवन शैली में आए परिवर्तन एवं विकास की गति में ऊँट लगातार पिछड़ता जा रहा है। फिर भी आज ऊँट स्वास्थ्यवर्धक दूध, वैकल्पिक यातायात सुविधा एवं मनोरंजन प्रदान कर रहा है। आज का समय अत्यधिक संख्या में ऊँटों को रखने का नहीं रह गया है लेकिन सीमित संख्या में इनकी आवश्यकता हमेशा रहेगी। जब पशु संख्या सीमित हो जाती है तो उनका प्रजनन भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। बदलते परिवेश में जहाँ चरागाह समाप्ति के कगार पर है एवं चारे की कीमतों में वृद्धि निरन्तर होती जा रही है ऐसे में ऊँटों को भी घर में पालने की एवं खिलाने की जरूरत हो गई है। ऐसी स्थिति में पर्याप्त मात्रा में नर ऊँटों को प्रजनन के लिये तैयार करना, अन्तः प्रजनन नहीं होने देना, उत्पादन पर्याप्त मात्रा में लेना एक चुनौतिपूर्ण कार्य है। ऊँटों में कृत्रिम गर्भाधान सफल न होने से यह और महत्वपूर्ण विषय हो जाता है। ऊँटों से अधिक उत्पादन लेने में इसका ऋतु अनुसार प्रजनन करना भी एक बाधा है, फिर भी समस्त सीमाओं के होते हुए वैज्ञानिक तरीके

से इनका चयन एवं प्रजनन करें तो अधिक लाभ उठा सकते है एवं प्रकृति पर कृत्रिम संसधानों से पड़ने वाले हानिकारक प्रभावों जैसे ग्लोबल वार्मिंग से बचा जा सकता है ।

हम अगर विश्व परिदृश्य को देखें तो स्पष्ट होता है कि वर्तमान परिस्थितियों में अधिकतर पशुओं में मांस एक मुख्य उत्पाद हो गया है एवं मानव काफी हद तक इस कारण से भी इन पशुओं को पाल रहा है। गाय, भैंस, बकरी, भेड., सूअर, पॉल्ट्री आदि में मांस के महत्व को सभी समझते हैं। ऐसा लगता है कि ऊँट में भी इसी प्रकार का चलन आ सकता हैं।

यह सभी को ज्ञात है कि किसी भी जीव की उपयोगिता ही उसे बचाती है। समय के अनुसार इस उपयोगिता में बदलाव आता रहता है। वर्तमान परिस्थितियों में ऊँट इसी प्रकार के एक बड़े बदलाव के दौर से गुजर रहा है जहाँ इसके पुराने उपयोग का महत्व क्षीण होता जा रहा है वही नये उपयोग को खोजना एक चुनौती पूर्ण कार्य हो गया है। फिर भी यह केन्द्र पिछले कई वर्षों से इस पहलू पर कार्य कर रहा हैं। इनमें प्रमुख है दूध उत्पादन को बढाना, ऊँट के दूध को एक स्वास्थ्य–वर्धक पेय के रूप में स्थापित करना, इसकी मानव बीमारियों में उपयोगिता सिद्ध करना, उष्ट्र ऊर्जा से बैटरी चार्ज करना, मानव कैन्सर में इसके एन्टीबॉडी का उपयोग ढुंढना, साँप का जहर रोधी बनाना आदि।

उष्ट्र वंश

भारत वर्ष में दो प्रकार के ऊँट पाये जाते हैं। एक कुब्बड़ वाले जिनको वैज्ञानिक भाषा में ड्रोमेडरी कहते हैं एवं दूसरे दो कुब्बड वाले जिनको वैज्ञानिक भाषा में बेक्टीरीयन कहते हैं। कृषि पर राष्ट्रीय आयोग 1976 के अनुसार देश में 9 उष्ट्र नस्ले हैं, जो कि बीकानेरी, जैसलमेरी कच्छी, मारवाड़ी, मेवाड़ी, साँचौरी, सिन्धी एवं रिवेराईन नाम से जानी जाती है। इस केन्द्र ने इस दिशा में काफी कार्य किया है एवं विभिन्न स्थानों पर पाये जाने वाले ऊँटों को नस्ल अनुसार वर्गीकृत करने का प्रयास किया है। उक्त अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ है कि वर्तमान में देष में ऊँटों की चार प्रमुख नस्लें है। ये हैं – बीकानेरी, जैसलमेरी, कच्छी एवं मेवाड़ी। इन चारों नस्लों पर मात्रात्मक, मूल्यात्मक तथा आणविक अध्ययन इस केन्द्र ने सफलतापूर्वक किये हैं।

बीकानेरी

बीकानेरी नस्ल के ऊँट बीकानेर एवं आसपास के जिलों जैसे गंगानगर, हनुमानगढ़, चूरू, झुंझनू, सीकर एवं पास के राज्य हरियाणा में पाये जाते हैं। इसका प्रजनन क्षेत्र शुष्क है एवं यहाँ काफी कम वर्षा होती है। बीकानेरी ऊँटों को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। यह दिखने में सुन्दर एवं हष्ट–पुष्ट होते हैं। यह मुख्य रूप से बोझा ढोने वाली नस्ल है, लेकिन इसका दूध एवं बाल उत्पादन भी अच्छा है। ये ऊँट अच्छी कद–काठी के मजबूत शरीर वाले एवं फूर्तीले होते हैं। इन ऊँटों का रंग गहरा भूरा व काला होता है। इनके सिर पर 'स्टोप' होता है एवं इन ऊँटों के कानों पर, आँखों की पलकों एवं भौंह के ऊपर अधिक बाल होते हैं। इस लक्षण को आम बोल चाल में 'झींपरा' कहते हैं। औसतन एक बीकानेरी ऊँट का जन्म के समय वजन 38 किलो एवं वयस्क अवस्था में 600 किलो होता है। ये लगभग 800 ग्राम बाल प्रतिवर्ष पैदा करते हैं, इन बालों की लम्बाई 6.27 सेमी होती है। इनका उपयोग ऊँट पालक कम्बल, शॉल, दरी, रस्सी आदि बनाने काम में लेते हैं।

जैसलमेरी

जैसलमेरी ऊँट जैसलमेर, बाड़मेर जिलों एवं जोधपुर जिले के कुछ हिस्सो में पाये जाते हैं। ये लम्बी दूरी तय करने एवं दौड़ के लिये उपयुक्त ऊँट हैं। इनका शरीर हल्का एवं गठीला होता है एवं रंग हल्का भूरा होता है। इनका प्रजनन क्षेत्र शुष्क एवं कम वर्षा वाला है। इनका सिर छोटा एवं नाक तीखा होता है। इनमें बालों का उत्पादन 700 ग्राम प्रतिवर्ष होता है एवं बालों की लम्बाई 6 सेमी होती है। इनका जन्म के समय वजन 36 किलो एवं वयस्क अवस्था में वजन 595 किलो होता है।

कच्छी

यह नस्ल गुजरात में कच्छ एवं आसपास के क्षेत्रों में पाई जाती है। यह दूध उत्पादन एवं बोझा ढोने के लिये उपयुक्त है। इसका प्रजनन क्षेत्र दलदल एवं नमी वाला है। इनका रंग गहरा भूरा होता है। इन ऊँटों

का जन्म के समय वजन 36 किलो एवं वयस्क अवस्था में 550 किलो होता है। इनके बाल घुंघराले एवं छोटे होते हैं। इनके बालों का वार्षिक उत्पादन 600 ग्राम होता है एवं बालों की लम्बाई 4.42 सेमी होती है।

मेवाड़ी

यह नस्ल दक्षिणी राजस्थान एवं पास में लगते हुए मध्यप्रदेश में पाई जाती है। इसका प्रजनन क्षेत्र पहाड़ी है। यहाँ अपेक्षाकृत वर्षा अधिक होती है एवं हरियाली भी ज्यादा है। ये ऊँट थोड़े छोटे होते हैं एवं इनका शरीर गठीला होता है। इनके पीछे के पुट्ठे मजबूत होते हैं एवं पैरों का तला कड़क होता है। ये पहाड़ी क्षेत्र में सामान लाने–ले जाने के लिये उपयुक्त हैं। ये ऊँट दुध उत्पादन में भी बहुत अच्छे हैं एवं वर्तमान में इनको दूध उत्पादन के लिये ही पाला जा रहा है। इनके शरीर पर जिस प्रकार के बाल पाये जाते हैं वे इनको मधुमक्खियों एवं अन्य कीड़ों के काटने से बचाते हैं। ये ऊँट रंग में हल्के भूरे से सफेद होते हैं।

दो थुई वाले ऊँट

ये ऊँट भारत में जम्मु–कश्मीर राज्य के लद्दाख क्षेत्र की नुब्रा घाटी में पाये जाते हैं । इनकी अनुमानित संख्या 141 है । यह कद में छोटे, वजन में हल्के एवं भूरे रंग के होते हैं। इनका प्रजनन क्षेत्र शुष्क एवं यहाँ तापमान गर्मियों में बहुत अधिक एवं सर्दियों में बहुत कम हो जाता है। यह क्षेत्र समुद्रतल से लगभग 10000 फीट की ऊँचाई पर है एवं यहाँ भी ये पहाडों में लम्बी दूरी तय करने के काम आते हैं। इनके शरीर पर बाल अधिक होते हैं जो कि इनको सर्दियों में कम तापमान से बचाते हैं।

विश्व परिदृश्य को देखेते है तो पता चलता है कि इनकी कुल आबादी 2 मिलियन के आसपास है। एक अनुमान के अनुसार करीब 800 ऊँट उत्तर पश्चिमी चीन व मंगोलिया में जंगली अवस्था में हैं। दो कूबड वाले ऊँटों की कुछ आबादी जंगली अवस्था में गोबी रेगिस्तान में भी है। एक अध्ययन के अनुसार जंगली एवं पालतु दो कुब्बड वाले ऊँटो में करीब 3 प्रतिशत अनुवाशिकी विषमताएँ हैं।

वर्तमान में भारत में इनका उपयोग सफारी के लिये हो रहा है। लेह में एक छोटा फार्म इनके लिये बनाया गया है। यहाँ करीब 20 ऊँटों को रखा जाता है एवं इसके लिये केन्द्र सरकार ने आर्थिक सहयोग दिया है । इन ऊँट पालकों की प्रमुख समस्या है कि इनके खाने के लिये वर्ष में कुछ महिने ऐसे होते हैं जब कुछ नही होता है एवं उस वक्त इनको बचाने में काफी दिक्कत आती है। इसी वक्त बच्चों का पालन पोषण भी कठिन हो जाता है। कुछ बच्चे नदी में डुबकर मर जाते हैं । सिल्क रूट बन्द होने के बाद से इन ऊँटों का बहुत ही छोटा समूह भारत में रह गया था, इसलिये इनमें अन्तः प्रजनन काफी मात्रा में हो गया है। अतः इनके अनुवांशिक सुधार के लिये मंगोलिया या चीन से कुछ ऊँट लाने चाहिए। इस सम्बन्ध में राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र एक प्रस्ताव भारत सरकार को भेजने वाला हैं। साथ ही चूँकि यह क्षेत्र अनुसुचित जन जाति क्षेत्र है इसलिये यहाँ समय–समय पर जनजाति उपयोजना के अन्तर्गत भी कार्य किया जा रहा है एवं 12 वी पंचवर्षीय योजना अवधि के दौरान इसके जारी रहने की संभावना है।

उष्ट्र दुग्धशाला

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र ने अपने यहाँ कराये गये अध्ययन को आगे बढ़ाते हुए इस क्षेत्र में काफी कार्य किया है। इस सम्बन्ध में केन्द्र में मेवाड़ी नस्ल के ऊँट लाये गये एवं इनका उन्नत विधि से प्रजनन करवाया गया। उष्ट्र दूध डेयरी की स्थापना की गई एवं इसके औषधीय उपयोग पर कार्य किया गया। राजस्थान सहकारी डेयरी संघ के माध्यम से भी इसको देश के विभिन्न शहरों में पहुँचाया गया। विभिन्न प्रकार के उत्पाद भी बनाये गये, जिनमें इसकी कुल्फी काफी लोकप्रिय हुई है। स्थानीय नस्लों की दुग्ध उत्पादन क्षमता को बढ़ाने के लिये एक परियोजना हाल ही में शुरू की गई है। इसके तहत अध्ययन से पता चला है कि एक सांड 16 महीने तक लगातार दूध दे सकती है। औसतन प्रतिदिन उत्पादन 7 लीटर एवं एक दूधकाल में 3400 लीटर दूध देती है। कुछ अच्छी मादाएँ 10.12 लीटर दूध प्रतिदिन देती हैं जिनका उपयोग चयनित प्रजनन में कर अनुवांशिक सुधार किया जा सकता है। साथ ही यह भी पता चला है कि ऊँटनी अपने दुग्धकाल

के 5 वें महिने में अधिकतम दूध देती है एवं इसके अधिकतम उत्पादन से इसके दुग्धकाल के उत्पादन का पता आसानी से लगाया जा सकता है, विशलेषण से यह भी ज्ञात हुआ कि नियमित दूध उत्पादन लेने के लिये एवं बच्चों की उचित देखरेख के लिये इसमें ऋतु अनुसार प्रजनन ही करवाना चाहिये। इसी क्रम में आगे बढ़ते हुए अब इस पर केन्द्र दुग्ध उत्पादन क्षमता को लेकर चयनीत प्रजनन प्रारम्भ किया जा रहा हैं, ऐसे प्रयास हैं कि इस केन्द्र पर इस हेतु एक समूह विकसित किया जाय जो कि दुग्ध उत्पादन में उत्कृष्ट हो। समय–समय पर इस समूह में अच्छी दुग्ध उत्पादन क्षमता वाली सांडों को सम्मिलित किया जाए एवं निम्न उत्पादन वाली सांडों को निकाला जाए। इस समूह से उत्कृष्ट नर तैयार किए जाएं जो कि केन्द्र पर एवं पशुपालकों के उष्ट्र समूहों में प्रजनन में काम आए एवं दुग्ध उत्पादन बढ़ाकर न केवल उष्ट्र पालक की आय बढ़ाए बल्की जन–जन को पोषण सुरक्षा देने एवं उष्ट्र संरक्षण में अपना महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करे।

उष्ट्र कार्य–क्षमता

ऊँट अपनी कार्य क्षमता के कारण ही सदियों से पाला जा रहा है । यह रेगिस्तान में खेतो में कार्य करने, बोझा ढोने एवं लम्बे समय से सवारियाँ ढोने के काम में आ रहा है। रेगिस्तान में कार्य करने के लिये यह सबसे उपयुक्त पशु है, क्योंकि यह कम व अधिक तापमान में कम पानी पी कर भी लम्बी दूरी तय कर सकता है। बीकानेरी नस्ल इस कार्य के लिये सर्वोत्तम मानी गई है। इस केन्द्र पर किये गये प्रयोगों से पता चलता है कि एक ऊँट अपने शारीरिक वजन का 17 से 22 प्रतिशत कार्यबल पैदा करना है। परोक्ष चयन परियोजना चलाई गई एवं पिछले दस वर्षो में इस पद्धति से उन्नत ऊँट पैदा किये गये एवं प्रजनन क्षेत्र में कार्य क्षमता बढाने के लिये बाँटे गये।

उष्ट्र बाल

हालाँकि ऊँट के बालों का महत्व मात्रात्मक दृष्टिकोण से कम है एवं वर्तमान में ऊँट पालक अपने घर में काम आने वाली वस्तुएँ ही बनाता है। एक अनुमान के अनुसार भारत में 2 से 2.5 लाख किलो उष्ट्र बाल का उत्पादन होता है लेकिन इनको इक्कठा करना एक खर्चीला कार्य है। वर्तमान में प्रतिव्यक्ति आय एवं बाहर के देशों से आने वाले यात्रियों की संख्या में वद्धि को देखते हुए इनका उपयोग हतकरघा लघु उद्योगों में कर सजावटी सामान बनाया जा सकता है।

उष्ट्र चमडा एवं हड्डी

उष्ट्र चमडे का उपयोग पहले के समय में भी उष्ट्र पालक घरों में करते थे लेकिन अब इसका उपयोग सजावटी एवं काम में आने वाली कई वस्तुओं को बनाने में हो रहा है। इसी प्रकार ऊँट की हड्डियों से खिलौने बनाये जाने लगे हैं जो कि हाथी–दाँत के विकल्प के रूप में देखे जाने लगे हैं।

उष्ट्र दौड.

उष्ट्र दौड़ ऐसा क्षेत्र है जिसमें हमें काफी कार्य करने की जरूरत है। मध्यपूर्वी देशों में उष्ट्र दौड बहुत लोकप्रिय है एवं इसके लिये वहाँ चयनित प्रजनन कराया जाता है। चूँकि प्रतिव्यक्ति आय इस देश में भी काफी बढ़ गई है एवं एक आम भारतीय अब अपने मंनोरंजन के लिये पहले से काफी अधिक पैसा खर्च करता है। भारतीय ऊँटों की जैसलमेरी नस्ल इस कार्य के लिए उपयुक्त है। उष्ट्र दौड़ से उष्ट्र पालक काफी पैसा कमा सकते हैं।

विश्व परिदृश्य

विश्व परिदृश्य में अगर ऊँटों की संख्या एवं इनके उत्पाद का देखें तो पता चलता है कि वर्ष 1961 से वर्तमान ऊँट संख्या लगभग दोगुनी है एवं दुग्ध उत्पादन एवं मांस उत्पादन करीब तीन गुना हो गया है। उष्ट्र दूध एवं मांस गरीब जनता के लिये प्रोटीन का एक अच्छा स्त्रोत है। ऐसी स्थिति में हमें उष्ट्र दूध उत्पादन पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। मानव की उष्ट्र द्वारा आवश्यकता पूर्ति ही इसकी संख्या में निरन्तर वृद्धि का कारण है।

❑

ऊँटनियों में थनैला रोग के कारण, बचाव व उपचार

डॉ. फतेहचन्द टुटेजा, डॉ. सज्जन सिंह एवं नेमीचन्द बारासा
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

रेगिस्तान में ऊँटनी को एक अच्छा दुधारू पशु माना जाने लगा है। सूखे अथवा अकाल के समय जब अन्य दुधारू पशु, दूध देना कम कर देते हैं तो ऐसे में ऊँटनी की दुग्ध उत्पादन क्षमता में कोई विशेष कमी नहीं आती। ऊँटनी औसतन 3–6 लीटर दूध प्रतिदिन दे देती है तथा इसका दुग्धकाल समय 14–16 महीने तक रहता है। ऊँटनी के दूध में अन्य दूधारू पशुओं के दूध की तरह सभी पोषक तत्व पाए जाते हैं। इसके अलावा ऊँटनी के दूध में कुछ विशेष खूबियां पाई जाती हैं जैसे कि विटामिन–सी, तांबा, जस्ता, मुक्त–कैल्शियम इत्यादि की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है। अब ऊँटनी को एक दुधारू पशु के रूप में विकसित किया जाने लगा है।

थनैला रोग अथवा मैस्टाईटिस विशेषकर दुधारू पशुओं की बीमारी है। इस रोग को अयन का रोग अथवा स्तन रोग के नाम से भी जाना जाता है। राजस्थानी क्षेत्रों में इसे 'लेवटी की सूजन' भी कहा जाता है। मैस्टाईटिस होने से पशु में दूध उत्पादन की मात्रा कम होने के साथ–साथ दूध के स्वाद एवम् सुगन्ध पर भी बुरा असर पड़ता है। इस बीमारी की कुछ अवस्थाओं में दूध उपयोग लेने लायक नहीं होता। इस बीमारी से ग्रसित ऊँटनियों के दूध सेवन से ऊँटनियों के दूध पीते बच्चों एवं मनुष्यों के स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। चूंकि ऐसे दूध में कई रोग पैदा करने वाले जीवाणु या जीवाणु विष दूध में आने लगते हैं।

रोग के कारण

कोई भी जीवाणु अथवा फफूंद जो मौका मिलते ही तंतुओं में प्रवेश कर रोग पैदा करते हैं, लगभग ये सभी मैस्टाईटिस कर सकते हैं। ऊँटनियों में यह बिमारी विषेशकर स्टैफाईलोकोकाई, स्ट्रेपटोकोकाई तथा कोलाईफार्म जीवाणुओं से होती है।

पशु के अयन अथवा थनों पर घाव, समय पर दूध न दुहना तथा दूध दुहते समय अयन व थनों की सफाई का अभाव इस रोग के जीवाणुओं के फैलने में सहायक होते हैं। बीमारी ग्रस्त पशु का दूध निकालते हुए, बिमारी के जीवाणु हाथों से स्वस्थ पशु के अयन को रोगग्रस्त कर सकते हैं। अन्य रोगग्रस्त पशुओं जैसे गाय, भैंस, भेड़, बकरी आदि से भी बीमारी के जीवाणु स्वस्थ ऊँटनियों में फैल सकते हैं।

ऊँटनियों में यह रोग अन्य दुधारू पषुओं की अपेक्षा कम होता है। मशीनों की बजाय हाथों से ऊँटनियों का दुहना, ऊँटनियों का थूथन पर बैठना जिसमें अयन सीधा जमीन के सम्पर्क में नहीं आता। शुष्क वातावरण में नमी की कमी तथा गर्मियों एवम् सर्दियों में अधिकतम एवम् न्यूनतम तापमान के कारण, बीमारी के जीवाणु नहीं पनप पाते इसका कारण हो सकते हैं। पशु की अन्तः रोग अवरोधक क्षमता जिसमें मुख्यतः थनों में दो नलिका वाली दूध नली, भिन्न रोग–प्रतिकारक (एन्टीबाडीज), दुग्ध लैक्टोफैरीन, दुग्ध अमलीयता (पी.एच. 6.2) इत्यादि जीवाणुओं के पनपने में बाधा डालते हैं।

रोग के प्रकार

यह बीमारी मुख्यतः दो अवस्थाओं में ऊँटनियों में होती है :–

लक्षण रहित थनैला या सबक्लीनिकल मैस्टाईटिस

इस अवस्था में बीमारी के जीवाणु पशु के अयन में पनपते रहते हैं परंतु बाह्य लक्षण प्रतीत नहीं होते। कुछ पषुओं में बीच–बीच में दूध में खराबी या अयन पर सूज़न हो जाती है। धीरे–धीरे पशु का दूध सूख जाता है तथा रोग का अधिक जोर होने पर पशु दूध देना बन्द कर देता है। कुछ पशुओं में थोड़े समय बाद बीमारी के लक्षण भी पैदा हो जाते हैं। अध्ययन के दौरान लगभग 40 प्रतिशत लक्षणरहित ऊँटनियों में थनैला रोग के जीवाणु पाए गए।

लक्षणयुक्त थनैला या क्लीनिकल मेस्टाईटिस

इस अवस्था में पशु के अयन पर सूज़न आ जाती है जिससे अयन के आकार तथा प्रकृति में अन्तर आ जाता है। पहले अयन लाल व गर्म हो जाता है। थनों को हाथ लगाने से पशु दर्द महसूस करता है। बाद में अयन सख्त व ठण्डा हो जाता है। दूध में कमी तथा दूध के रंग व इसके गाड़ेपन में बदलाव आ जाता है। कभी–2 दूध फटा हुआ, दूध में छीछड़े तथा खून भी आने लगता है। इस अवस्था में ऊँटनी बच्चों को दूध नहीं पीने देती। जिन पशुओं में यह लक्षण केवल अयन तक सीमित रहते हैं ऐसे रोग को मध्यम दर्जे का थनैला रोग माना जाता है। अगर पशु में यह लक्षण प्रणालीगत जैसे कि बुखार, कम आहार व शाक अथवा झटका आदि करें तो इसे तीव्र दर्जे का थनैला रोग माना जाता है।

ऊँटनियों में रखरखाव प्रबन्धन ठीक प्रकार से न होने पर एक अलग तरह का सूज़न अवसाद थनैला रोग हो जाता है। ऊँटनियों में ब्याने के बाद थनों व अयन पर सूज़न आ जाती है। यह सूज़न ऊँटनियों में अन्य पशुओं की अपेक्षाकृत अधिक होती है। ब्याने के 3–4 दिन तक सूज़न रहती है, इसके बाद यह कम होने लगती है तथा 15–20 दिन में अयन बिल्कुल सामान्य हो जाता है। कुछ ऊँटनियों में यह सूज़न कम नहीं होती, ऐसी ऊँटनियों को व्यायाम स्वरूप अगर कुछ दूरी (5–10 कि.मी.) तक चलाया जाए तो यह सूज़न जल्दी ठीक हो जाती है। वे ऊँटनियां जिनमें सूज़न कम नहीं होती और चलाया भी नहीं जाता तो ऐसी ऊँटनियों में सूज़न अवसाद तरह का थनैला रोग हो जाता है। ऐसे पशुओं में पहले अयन की अत्याधिक सूज़न हो जाती है। थनों से दूध आना बन्द हो जाता है। थनों को हाथों से पकड़ने पर इनकी त्वचा सूखी लगती है, फिर दूध का फटना व दूध में छीछड़े, फूटक आदि आने लगते हैं, इसके पश्चात् अयन नीला पड़ने लगता है तथा कुछ थन बन्द पड़ जाते हैं, आखिर में अयन ठण्डा पड़ जाता है और लेवटी पूरी तरह से खराब हो जाती है।

रोग की जांच

लक्षणयुक्त थनैला में लक्षणानुसार

अयन तथा थनों पर सूज़न, दर्द व अयन का सख्त होना तथा अयन के आकार एवं प्रकृति में अन्तर इत्यादि।ऊँटनी का बच्चों को दूध न पीने देना दूध में कमी, दूध के रंग व गाढ़ेपन में बदलाव तथा दूध में छीछड़े व फूटक इत्यादि। ऊँटनियों में ब्याने के बाद सूज़न अवसाद थनैला के लक्षण इत्यादि।

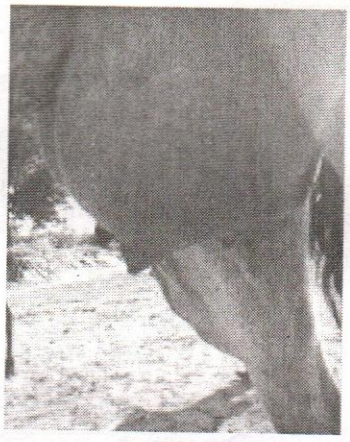

छाया चित्र 1 :ब्याने के बाद अयन की सामान्य सूजन

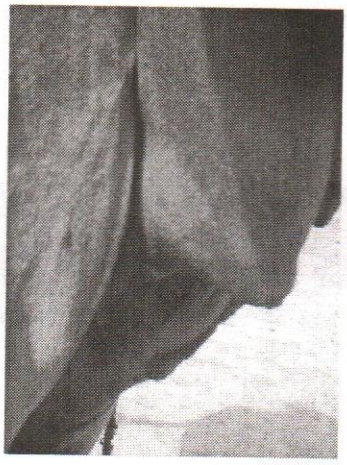

छाया चित्र 2 : थनैला ग्रस्त पशु के शुरूआती लक्षण व दूध की कमी इत्यादि

छाया चित्र 3 : थनैला ग्रस्त पशु का अयन बेकार होना व दूध का समाप्त होना

जीवाणु (बैक्टीरियोलॉजिकल) परीक्षण

इस परीक्षण में प्रत्येक थन से स्टरलाइज्ड तरीके से पशु के दूध के नमूने को परीक्षण के लिए अलग–2 टेस्ट टयूब में लिया जाता है। तत्पश्चात प्रयोगशाला में दूध को विभिन्न जीवाणु मीडिया पर कल्चर किया जाता है तथा दूध में किस प्रकार के जीवाणु है, इसका पता लगाया जाता है। जीवाणुओं के आधार पर कई तरह की प्रतिजैविकी दवाइयां अर्थात् एंटीबाईटिक को जांचा जाता है तथा पता लगाया जाता है कि कौन सी प्रतिजैविकी दवा ईलाज के लिए उत्तम है। लक्षणरहित थनैला में अगर जीवाणु जांच में नहीं आते हैं तो जांच करना मुश्किल होता है और इसके लिए सूजन के कारण कोशिकाओं अथवा उत्तकों/तंतुओं में पैदा होने वाले अवशेष को जांचा जाता है।

स्ट्रीप कप परीक्षण

इसमें एक विशेष प्रकार का कप होता है, पशु को दुहते समय प्रत्येक थन का प्रथम दूध, इस कप के ढक्कन की जाली के ऊपर डाला जाता है। जिस थन के दूध में जाली पर छीछड़े या फूटक दिखाई देती है, समझना चाहिए कि वह थन रोग से ग्रस्त है।

दैहिक कोषिका (सोमैटिक सेल) गणनांक जाँच (काउन्ट टेस्ट)

दूध में साधारणतः कुछ संख्या में सोमेटिक सैल मिलते हैं। प्रति मिली लीटर दूध में सैल की संख्या को सोमेटिक सैल कांऊट कहते हैं। अगर सेल काउन्ट प्रति मिली लीटर बढ़ जाती है तो यह अयन के अन्दर सूजन को दर्शाती है। इसलिए अगर सेल काउंट बढ़ जाए तो समझना चाहिए कि पशु थनैला रोग से ग्रस्त है। किसी भी डेयरी अथवा दूधशाला में सामान्य तौर पर एकत्रित किए गए दूध की सोमैटिक सेल काउन्ट से डेयरी पशुओं के अयन स्वास्थ्य के बारे में अंदाजा लगाया जा सकता है। कुछ लक्षणरहित पशुओं में जीवाणु परीक्षण के दौरान जीवाणु जांच में नहीं आते हैं लेकिन सोमैटिक सेल काउन्ट से जाँच में आ जाते है। ऐसे पशुओं को नॉन स्पेसिफिक थनैला रोग से ग्रसित माना जाता है।

कैलीफोरनिया मैस्टाईटिस् परीक्षण

इसमें एक साधारण प्लास्टिक का पैडल होता है चूंकि दुधारू पशुओं (गाय, भैंस, ऊँटनी) में चार थन होते हैं इसलिए इसमें चार कप बने होते हैं। चारों कपों में लगभग 3 मि.ली. दूध अलग–अलग थनों से अलग–2 कपों में डाला जाता है तथा लगभग बराबर की मात्रा का विशेष रासायनिक घोल (कैलीफोरनिया रीजेन्ट) प्रत्येक कप में डाला जाता है। पैडल की सतह बनाए रखते हुए चक्रनुमा घुमाया जाता है। दूध का गाढ़ा होना तथा कप की सतह पर चिपकना रोग की तीव्रता को दर्शाता है। चूंकि कैलीफोरनिया रीजेन्ट से सोमैटिक सेल टूट कर जैल अथवा गाढ़ापन बनाती है। इसलिए यह टैस्ट दूध में सोमैटिक सेल काउंट को सरल तरीके से बताता है ताकि किसान खुद ही घर बैठे रोग की जांच कर सके। दूध में जैल गठन के आधार पर श्रेणीकरण (ग्रैडिंग) कर रोग की तीव्रता को जाना जाता है।

स्कोर (ग्रैडिंग)	कप में घोल का दिखाई देना
–	साधारण मिश्रित घोल थोड़ा गाढ़ापन पर जैल गठन न होना पूरा गाढ़ापन पर जैल गठन न होना पूरा जैल गठन होना लेकिन पैडल घुमाने पर जैल का कप की सतह पर न चिपकना और

कप के चारों तरफ जैल का होना एकदम जैल गठन होना और कप की सतह पर चिपक जाना तथा पैडल घुमाने पर कप के बीच में जैल इकट्ठा हो जाना

पी.एच.परीक्षण

ऊँटनी के दूध की पी.एच. अगर साधारण (6.2 से 6.6) स बढ़कर 7.0 हो जाती है तो थनैला रोग के जीवाणु पशु के दूध के नमूने से कल्चर द्वारा पाए गए हैं। उक्त बताए गए मुख्य तरीकों के अलावा अन्य भी कई प्रकार के परीक्षणों से थनैला रोग की जांच की जा सकती है।

रोग से बचाव

यह बीमारी मुख्यतः पशुओं के रखरखाव से सम्बन्धित है और सही रखरखाव द्वारा इसका बचाव किया जा सकता है।

सफाई का ध्यान रखना

चूंकि गंदगी के कारण इस रोग के जीवाणु अधिक पनपते हैं, इसलिए दोहक के हाथों, बर्तनों, कपड़ों तथा पशु के अयन की सफाई का विशेष ध्यान रखना चाहिए। अगर ऊँटनियों के रखने के स्थान को अच्छी तरह से साफ रखा जाता है तो गन्दगी में पनपने वाले जीवाणुओं से बचाव किया जा सकता है।

दूध दुहने का तरीका

दूध दुहते समय विशेष ध्यान यह रखा जाए कि पहले स्वस्थ पशुओं का दूध निकाल लिया जाए तथा बाद में रोग ग्रस्त पशुओं का, वरना बीमारी के जीवाणु रोगग्रस्त पशुओं से स्वस्थ पशुओं में फैल सकते हैं। दूध ऐसे तरीके से दुहना चाहिए जिससे पशु के थनों को नुकसान न हो। साधारणतः हथेली में अगूंठा दबाकर दूध दुहने की बजाय बिना अगूंठा दबाए दूध दुहना चाहिए।

थनों को दवा में डुबाना

चूंकि रोग के जीवाणु पशु के थनों के दूध निकलने के स्थान अर्थात् दुग्ध–नलिका छिद्र से मुख्यतः प्रवेश करते हैं और दूध निकालने के कुछ समय बाद तक दूध नलिका छिद्र खुला रहता है। इसलिए दूध निकालने के बाद पशु के थनों को लाल दवा या डिपाल नामक दवा में डुबाने से थनों के ऊपर जो जीवाणु रहते हैं, थनों में प्रवेश करने से पहले ही नष्ट हो जाते हैं।

ऊँटनियों को दुग्ध से सुखाना

दुग्ध काल समय के आखिर में ऊँटनियों का दूध निकालना एकदम बन्द नहीं करना चाहिए तथा दूध से सुखाने के लिए पहले दूध निकालने के समय को बढ़ाना चाहिए। मान लो कि अगर आप 12 घंटे के अंतराल से दूध निकाल रहे हैं तो इस अंतराल को पहले कुछ दिन 24 घंटे व फिर 48 घंटे करें इससे पशु अपने आप ही दूध सुखा देगा। अगर आप एकदम दूध निकालना बन्द कर देते हैं तो अयन में जो दूध उतरेगा वह अयन में रहेगा तो यह दूध जीवाणुओं के पनपने में मददगार होगा क्योंकि यह दूध जीवाणुओं के लिए एक सम्पूर्ण आहार अथवा जीवाणु मीडिया का काम करता है।

व्यायाम के तौर पर ऊँटनियों को चलाना

ऊँटनियों के ब्याने के बाद अगर लेवटी पर सूजन अधिक हो और कुछ दिन में कम न हो तो ऐसी ऊँटनियों को व्यायाम तौर पर चरागाहों अथवा जंगल में अवश्य चलाएं।

जाँच करवाना

समय–2 पर लक्षण रहित थनैला के लिए जाँच करना चाहिए तथा जिस पशु में इस रोग के जीवाणु मिले, उसका उपचार करवाना चाहिए।

रोगग्रस्त पशु को अन्य स्वस्थ पशुओं से अलग रखना

रोग का पता चलने पर रोगी पशु को अन्य स्वस्थ पशुओं से अलग कर देना चाहिए तथा रोगग्रस्त पशु का ईलाज करवाना चाहिए।

ऑक्सीकरण रोधी (एन्टीऑक्सीडेंट) लवण इत्यादि खिलाना

एक महीने तक रोजाना जस्ता, तांबा व सिलेनियम ऊँटनियों को खिलाने से इस रोग को 40 प्रतिशत तक रोकने में कारगर साबित हुए है।

अयन के घावों का तुरंत ईलाज करवाना

पशु के अयन पर यदि किसी तरह से घाव हो गए हैं या फिर ऊँटनी के बच्चे द्वारा दूध पीते समय उसके दांत से कट गए हैं तो ऐसे थनों का तुरंत ईलाज करवाना चाहिए।

ऊँटनियों को मक्खी मच्छर से बचाना

विशेषकर बारिश के दिनों में जब मक्खी मच्छर काफी बढ़ जाते हैं तो ये पशु के अयन जैसी नरम त्वचा पर अधिक काटते हैं। अतः मक्खी मच्छर से बचाना चाहिए तथा कटी त्वचा का तुरंत ईलाज करवाना चाहिए अन्यथा ये डंक, फफोले बन जाते हैं तथा इस रोग का कारण बनते हैं।

रोग का उपचार

एन्टीबाईटिक अर्थात् प्रतिजैविक दवा

रोग का शीघ्र पता चल जाने पर चिकित्सा आसान होती है परंतु यदि रोग के जीवाणु अयन में पूर्ण विकास कर चुके हो तो फिर रोग का औषधि द्वारा ठीक होना कठिन हो जाता है। इसलिए रोग का पता चलते ही तुरंत पशु चिकित्सक को दिखाना चाहिए तथा दूध के नमूने को किसी नजदीकी प्रयोगशाला में जांच करवा कर पशु के लिए उत्तम प्रतिजैविक दवा का पता लगाया जा सकता है। चूंकि हर जगह पर प्रयोगशाला सुविधा नहीं होती इसलिए जगह–2 के हिसाब से प्रकाशित एन्टीबाईटिक सेन्सिटिविटी रिपोर्ट की मदद से दवा का चयन करना चाहिए।

ऑक्सीकरण रोधी (एन्टीऑक्सीडेन्ट) दवा

विटामिन.ई और सैलेनियम को जब प्रतिजैविक दवा के साथ ऊँटनियों को दिया गया तो चिकित्सा परिणाम बेहतर मिले। कुछ कंपनियां इस रोग के हिसाब से ही एन्टीऑक्सीडेन्ट दवाइयाँ बना रही हैं।

सहायक चिकित्सा

(क) थनों व अयन पर दर्द की स्थिति में ऐनलजेसिक (दर्द निवारक) देना चाहिए। (ख) सूजन में एन्टीइनफ्लैमेटरी (सूजन निवारक) दवा देनी चाहिए (ग) विटामिन बी–कॉम्पलैक्स देने से पशु का पाचन ठीक रहने से बीमारी के निवारण में सहायता मिलती है। (घ) रोगग्रस्त थनों का दूध अच्छी तरह से निकाल देना चाहिए। यदि दूध थनों से अच्छी तरह से साफ नहीं हो रहा हो तो आक्सीटोसिन का टीका लगाकर दूध साफ किया जा सकता है। (ड) ऊँटनियों में विटामिन–सी खिलाने से भी लाभदायक परिणाम मिले हैं (च) पशु का अयन अगर गर्म हो तो इस पर ठण्डे पानी के छीटे और ठण्डा हो तो गर्म पानी की छींटे लगाने चाहिए।

□

भारत मे उष्ट्र दुग्ध उत्पादों की सम्भावनाएं व उपयोगिता

डॉ. राघवेन्द्र सिंह, नन्दकिशोर, डॉ. राकेश कुमार पूनियाँ
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

विश्व की कुल अबादी के दो तिहाई उष्ट्र अफ्रीकी एवम् अरब देशों में पाये जाते हैं जिनका उपयोग मुख्य रूप से माँस एवं दूध के लिए होता है। हमारे देश में मुख्यतः बीकानेरी, जैसलमेरी, मारवाड़ी, कच्छी और मेवाड़ी नस्ल के ऊँट पाये जाते है जो कि मुख्य रूप से बोझा ढोने, खेती के काम जैसे– हल चलाने, पानी निकालने, बुवाई करने, पाटा चलाने तथा सवारी आदि के काम में आते है। उष्ट्र दूध भारत के राजस्थान, गुजरात व हरियाणा प्रान्त के ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत समय से उपयोग में लाया जा रहा हैं। ग्रामीण लोग उष्ट्र दूध से निर्मित चाय, खीर, घेवर के अलावा कच्चा या उबालकर प्रयोग में लाते हैं।

ऊँटनी की दूध उत्पादन क्षमता, दुग्धकाल व गुणधर्मों के आधार पर तथा आधुनिक युग में इस प्रजाति के संरक्षण व समाज में इसके उपयोग के नये आयाम स्थापित करने की दिशा में ऊँटनी का दूध आज समाज में स्वास्थ्य की दृष्टि से विभिन्न वर्ग विशेष के लिए एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। ऊँटनी के दूध के उत्पादन की क्षमता शुष्कीय क्षेत्रों के अन्य दूधारू पशुओं की तुलना में कम लागत युक्त है। क्योंकि यह शुष्कीय वातावरण में भलीभांति अंगीकरण होने के कारण इसकी शरीर कार्यिकी अन्य पशुओं की तुलना में बिना किसी दबाव के सुचारू रूप से कार्य करती रहती है। जिससे इसके दुग्धकाल या दुग्ध उत्पादन की प्रक्रिया पर अकाल व अच्छे किस्म के चारे की अनुपलब्धता होने पर भी महत्वपूर्ण असर नहीं पड़ता है। ऊँटनी का दुग्धकाल 13–16 महीने का और औसत दूध उत्पादन 3 से 6 किग्रा प्रतिदिन प्रति ऊँटनी होता है। भारत में ऊँटनी के दूध व दुग्ध पदार्थो के उपयोग को बढ़ाने के लिए इसके पोषण मान व औषधीय गुणों की गाय, भैंस के दूध की तुलना में उपयागिता सिद्व कर तथा भविष्य में उष्ट्र दूध की उपलब्धता को समाज में सुनिश्चित करने के लिए ऊँट पालकों को डेरी व्यवसाय के प्रति अग्रसर करना होगा।

उष्ट्र दूध की केसर कुल्फी

ऊँटनी के दूध में कुल ठोस का प्रतिशत गाय व भैंस की तुलना में कम होने के कारण कुल्फी बनाते समय 2.5 लीटर दूध को लगभग एक लीटर आयतन के बराबर गाढ़ा करते हैं। जबकि गाय एवम् भैंस में इसका अनुपात 2:1 का है। कुल्फी बनाने के लिए सर्वप्रथम दूध को छानकर एवम् चीनी 50 ग्राम प्रति लीटर दूध के हिसाब से तथा केसर (0.01–0.02 प्रतिशत) मिलाकर उबालते हुए गाढ़ा (2.5 रू 1) कर लेते हैं। तत्पश्चात सूखे मेवे (1–4 प्रतिशत), नारियल का चूरा (4–6 प्रतिशत) डालकर अच्छी तरह मिला लेते हैं। चूँकि ऊँटनी के दूध से बनी कुल्फी का स्वाद हल्का–नमकीन होता है जिसका प्रभाव कम करने के लिए जायफल को पानी के साथ घीसकर 4 बूँद प्रति लीटर के हिसाब से मिलाया जाता है। सभी चीजों को अच्छी तरह मिलाने के पश्चात इसे 50 ग्राम आयतन या आवश्यकतानुसार आयतन के कुल्फी शंकुओ (कोन) में डालकर जमाने के लिए फ्रीजर या नमक और बर्फ के घोल (1:1) से भरे मिट्टी के बर्तन में रख देते हैं। इस प्रकार 3 से 4 घन्टे मे कुल्फी जमकर खाने के लिए तैयार हो जाती है।

कुल्फी एक परम्परागत भारतीय दुग्ध पदार्थ है। कुल्फी में वसा व प्रोटीन की मात्रा दूध की तुलना में लगभग तीन गुना होती है। इसके अलावा इसमें अन्य खाद्य पदार्थ जैसे– फल, सूखे मेवे, एवं चीनी आदि मिलाये जाते है जो इसके पोषण मान को बढ़ाते हैं। दुग्ध पदार्थों में कुल्फी कैल्शियम, फास्फोरस एवं अन्य खनिज पदार्थों का अच्छा स्रोत है जो कि हड्डी एवं दाँतो की मजबूती के लिए महत्वपूर्ण है। कुल्फी शाकाहारी व्यक्तियों में दुग्ध प्रोटीन का आसान स्रोत है। कुल्फी ऊर्जा प्रदान करने, शरीर के भार को बढ़ाने एवम् बढ़ते बच्चों के लिए स्वादिष्ट एवम प्रिय खाद्य है। जबकि फलयुक्त कुल्फी विटामीन 'सी' की प्रचुर मात्रा पायी जाती है।

वर्तमान में कुल्फी एक सुखेपभोग खाद्य पदार्थ की श्रेणी में आता है। कुल्फी का उपभोग शादी–विवाह एवम् बाजारों में दिनों–दिन बढ़ता जा रहा है। अतः ऊँटनी के दूध से बनी कुल्फी ऊँटनी के दूध के उपभोग को बढ़ाने एवम् कुछ क्षेत्रों में उष्ट्र–पालकों की आजीविका चलाने, आय को बढ़ाने का एक सरल तथा सस्ता माध्यम हो सकता है।

किण्वित उष्ट्र दुग्ध पदार्थ (लस्सी)

समूचे विश्व में किण्वित दुग्ध पदार्थ अपने स्वाद, पोषण मान व जैविकीय गुणों के लिए प्रसिद्ध है। भारत में तो दही, लस्सी इत्यादि किण्वित दुग्ध पदार्थों का आदिकाल से ही प्रचलन रहा है। दही में उपस्थित स्ट्रेप्टोकॉकाई तथा लैक्टो–वैसीलाई नामक जीवाणुओं के लाभकारी गुणों से इसकी पोषण महत्ता काफी बढ़ जाती है। दूध का उपयोग न कर पाने वाले व्यक्तियों के लिए दही एक वरदान साबित हो सकता है। दही में शर्करा, प्रोटीन, वसा, खनिज तथा विटामिन आदि प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। दही में विटामिन 'बी' दूध से अधिक मात्रा में पाया जाता है। दही में पाये जाने वाले जीवाणुओं से अतिसार व कब्ज जैसी आम बीमारी मे लाभकारी भूमिका है। दही के इस महत्व एवम् ऊँटनी के दूध के उपयोग को ध्यान में रखते हुए ऊँटनी के दूध से दही जमाने पर शोध कार्य केन्द्र की राष्ट्रीय कृषि तकनीकी परियोजना के अन्तर्गत पहली बार किया गया।

लस्सी बनाने की विधि

ऊँटनी का शुद्ध ताजा एवं छाना हुआ दूध जिसका पी.एच. मान – 6.54 तथा अम्लता 0.138 प्रतिशत, पानी– 91.09 प्रतिशत तथा कुल ठोस पदार्थ 8.91 प्रतिशत लिया गया। दूध को 15 से 25 मिनट तक उबालकर दूध को तुरन्त 30–37 डिग्री से. तक ठण्डा करके उसमें जामन (जो राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल से मंगाया गया था) को 2–4 प्रतिशत की दर से मिलाते हैं और 20–23 घंटे के बाद किण्वित दुग्ध (लस्सी) तैयार हो जाता है तथा तैयार दुग्ध पदार्थ के भौतिक एवम् रासायनिक गुणों का परिक्षण किया गया

पी.एफ.ए. के अनुसार दही जिस दूध से बनाया जाता है उसी का संघटन धारण करता है और अच्छी गुणवता वाली दही में अम्लता 0.8–1.2 प्रतिशत होती है। ऊँटनी के दूध पर अभी तक के अनुसंधान से पता चला है कि कुल ठोस पदार्थ लगभग 8.62 – 10.9 प्रतिशत तक होती हैं जबकि गाय एवम् भैंस में यह मात्रा क्रमशः 13 और 16 प्रतिशत होती हैं। जिसके कारण ऊँटनी का दूध जब किण्वन प्रक्रिया से गुजरता है तो दही के लगभग सभी गुण प्राप्त कर लेता हैं। लेकिन गाय व भैंस के दूध की तुलना में दही गाढा नही जमता है।

उपरोक्त दही को ज्ञानेन्द्रिय परिक्षण हेतु देशी एवम् विदेशी नागरिकों को सादा जीरा एवम् काला नमक तथा शर्करा मिलाकर पिलाया गया एवम् उनके विचार लिए गए। स्वीकार्यता के लिए सादा दही को 50 प्रतिशत लोगों ने सामान्य एवम् 50 प्रतिशत बहुत अच्छा, जीरा नमक मिश्रित दही को 5 प्रतिशत ठीक, 19 प्रतिशत सामान्य, 62 प्रतिशत अच्छा और 14 प्रतिशत ने बहुत अच्छा तथा शर्करा मिश्रित दही को 12 प्रतिशत ठीक, 13 प्रतिशत सामान्य, 50 प्रतिशत अच्छा, 25 प्रतिशत बहुत अच्छा बताया।

उष्ट्र दुग्ध उत्पाद–चीज

डेयरी जगत में चीज एक महत्वपूर्ण दुग्ध पदार्थ है जो कि खाने में स्वादिष्ट, पौष्टिक एवं सुपाच्य है। इसके उत्पादन से मुख्यतयाः दुग्ध केसीन व वसा को संरक्षित किया जाता है। जो आवश्यक अमीनो अम्ल, वसा व वसा में घुलनशील विटामिन का मुख्य स्रोत है। इसके अलावा इसमें आवश्यक खनिज जैसे– कैल्शियम एवं फास्फोरस भी प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं।

इण्डियन डेयरी फेडेरेशन 1995 के अनुसार विश्व में इसका उत्पादन 14 मिलीयन मिट्रिक टन जो कि कुल दूध उत्पादन का लगभग 30 प्रतिशत था। भारत में चीज का उत्पादन व उपभोग विश्व के कई देशों की तुलना में कम है।

चीज में नमी (पानी) को ध्यान में रखते हुए इसे विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है। जैसे– कठोर, कम कठोर, बहुत कठोर, तथा मृदुल आदि। विश्व में चीज की 400 से भी अधिक किस्में पाई जाती हैं। जिसमें मुख्यतः लिम्बरगर, कैममवर्ट, मोजरेला, काटेज, स्वीस, छेदार, रोक्यूफोर्ट तथा ब्रीक आदि। चीज को अनराइपेन्ड एवं राइपेन्ड श्रेणी में भी वर्गीकृत किया जाता है। भारत में प्रोसेस चीज का काफी प्रचलन है। जिसे दूध से बने हुए दो चीज किस्मों को एवं रंग,

सुगन्ध व संरक्षक आदि के साथ मिलाकर बनाया जाता है।

स्वच्छ ताजा एवं छाना हुआ उष्ट्र दूध एच.टी. एस.टी. विधि से पास्तुरीकृत कर 2–5 डिग्री सेन्टीग्रेड तक ठण्डा किया गया, उसके बाद 0.02 प्रतिशत की दर से कैल्शियम क्लोराइड एवं 50 प्रतिशत तनु हाइड्रोक्लोरिक अम्ल 4 मिलीलीटर प्रति लीटर की दर से मिलाकर दूध को 21 डिग्री सेन्टीग्रेड गर्म करके 50 मिलीग्राम प्रति लीटर की दर से रेनेट मिलाया गया, तथा स्कन्दन के लिए 25 डिग्री सेन्टीग्रेड पर रखा गया। एक घंटे के बाद स्कन्दित ठोस को काटकर 42 डिग्री सेन्टीग्रेड तक नियन्त्रित तापमान वाले पानी में रख कर पकाया गया। उसके बाद पके चीज एवं व्हे अलग कर तीन बार क्रमशः 25, 15, 10, डिग्री सेन्टीग्रेड के तापमान के पानी से धोकर चीज को मसलिन कपड़े से बांधकर लटका दिया गया। जब नमी कम हो गई तब प्लेट में चीज को रखकर नमक लपेटकर भंडारण हेतु ठण्डे में रखा गया। उत्पादित चीज सफेद, मृदुल स्वादिष्ट नमीयुक्त तथा उसका रसायनिक संघटन प्रतिशत में (नमी 56.8–65.4, कुल ठोस 34.8–43.2, वसा 7.5–10.5, अम्लता 0.56–0.080, उत्पादन 11. 52–12.8) मापा गया।

ऊँटनी के दूध का फ्लेवर्ड दूध

पास्तुरीकृत फ्लेवर्ड दूध या पेय में चाकलेट एवं फल सुगन्ध केसर, केला,वनीला,पाइनएपिल आदि) का प्रयोग किया जाता है। फ्लेवर्ड दूध बनाने के लिए निम्न वस्तुओं की निश्चित मात्रा में आवश्यकता पड़ती है।

1. दूध – न्यूनतम 2 प्रतिशत वसा युक्त न्यूनतम
2. चीनी – 5 से 7 प्रतिशत
3. स्टेबीलाइजर – सोडीयम एल्जीनेट–0.2 प्रतिशत, केरेजीनन– 0.02–0.05 प्रतिशत
4. सुगन्ध एवं रंग – आवश्यकतानुसार

ऊँटनी के दूध से फ्लेवर्ड दूध बनाने के लिए 1.4–5.1 प्रतिशत वसा, 7.5–8.0 प्रतिशत वसारहित ठोस पदार्थ एवम् 6.50–6.54 पी.एच. युक्त दूध का उपयोग किया गया। ऊँटनी के दूध को गरम कर छान लेते है फिर उसे 60^0 से. तक गरमकर उसमें चीनी, सुगन्ध, रंग एवं स्टेवीलाईजर डालकर अच्छी तरह घोल लेते है तत्पश्चात इसे 73^0 से. पर 15 मिनट तक गरम कर पास्तुरीकृत कर लेते हैं एवं बोतलों एवं पैकिंग में पैक कर 5^0 से. तापमान पर भण्डारित कर देते है। उक्त दूध को उपयोग से पूर्व बोतल को हिलाकर मिलाना आवश्यक होता है

सारांश

ऊँटनी के दूध के उत्पादन की क्षमता शुष्कीय क्षेत्रों के अन्य दुधारू पशुओं की तुलना में कम लागत युक्त (इकोनोमिकल) है। क्योकि यह शुष्कीय वातावरण में भलीभांति अंगीकरण (एडोपटीव) होने के कारण इसकी शरीर कार्यिकी अन्य पशुओं की तुलना में बिना किसी दबाव के सुचारू रूप से कार्य करती रहती है। जिससे इसके दुग्धकाल या दुग्ध उत्पादन की प्रक्रिया पर अकाल व अच्छे किस्म के चारे की अनुपलब्धता होने पर भी महत्वपूर्ण असर नहीं पड़ता है और अपने को अनुकुलित कर लेता है। आधुनिक युग में इस प्रजाति की कार्यक्षमता का ग्रामीण क्षेत्रों में घटते उपयोग व कम होते चारागाह को देखते हुए इस प्रजाति का संरक्षण व आधुनिक समाज में इसके उपयोग के नये आयाम स्थापित करने की दिशा में ऊँटनी का दूध एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। भारत में ऊँटनी के दूध व दुग्ध पदार्थ जैसे चीज, लस्सी, फ्लेवर्ड दूध, चाय, कॉफी आदि के उपयोग को बढाने के लिए इसके पोषण मान व औषधीय गुणों का गाय, भैंस के दूध की तुलना में उपयोगिता को सिद्व कर एक सकारात्मक सोच को जागृत करना पड़ेगा, समाज में इसके प्रति व्याप्त रूढिवादी परम्पराओं को वैज्ञानिक आधार पर बदलकर भविष्य में उष्ट्र दूध की उपलब्धता को समाज में सुनिश्चित करने के लिए ऊँट पालकों को डेरी व्यवसाय के प्रति अग्रसर करना होगा। दूध उत्पादन एवं दुग्ध पदार्थो का व्यवसायीकरण, ऊँट पालकों एवं समाज के लिए एक मील का पत्थर सिद्व होगा साथ ही उनके द्वारा अधिकाधिक आर्थिक लाभ एवं सामाजिक जीवन में महत्वपूर्ण प्रगति होगी। इस दिशा में इस केन्द्र ने विश्व बैंक द्वारा संचालित राष्ट्रीय कृषि तकनीकी परियोजना ' ऊँटनी एवम् बकरी के दूध एवम् दुग्ध उत्पाद के स्वःजीवन में सुधार' के माध्यम से प्रयास किया जा रहा है जिससे कि हमारे ग्रामीण एवम् शुष्क व अर्द्व शुष्क क्षेत्रों में इसकी उपयोगिता को बढावा मिले और ऊँट पालक ऊँटनी के दूध उत्पाद का पूरा–पूरा लाभ ले सकें।

शुष्क क्षेत्रों में चारागाह विकास एवं विभिन्न कृषि पद्धतियों द्वारा चारा उत्पादन

डॉ. एन.डी. यादव एवं डॉ. एम एल सोनी
केन्द्रीय मरु क्षेत्र अनुसंधान संस्थान का क्षेत्रीय केन्द्र (काजरी), बीकानेर

पश्चिमी राजस्थान में पशुपालन ग्रामीण आबादी की आजीविका का मुख्य साधन है। इस क्षेत्र की वर्षा का वार्षिक औसत 250 मि.मी. से भी कम है एवं अधिकतम तापमान ग्रीष्म ऋतु में 49° सेल्सियस को भी पार कर जाता है, जबकि सर्दियों के मौसम में न्यूनतम तापमान 2 डिग्री सेल्सियस तक गिर जाता है। क्षेत्र की आधी से अधिक भूमि टीले (धौरे) युक्त है तथा बलुई है, जिसमें कार्बनिक पदार्थ एवं अन्य पोषक तत्वों का नितान्त अभाव है। यहाँ वर्षा कम तो होती ही है, इसके अलावा मानसून का देरी से आना, समय से पूर्व चले जाना अथवा बीच–बीच में लम्बी अवधि का सूखा पड़ना एक सामान्य सी प्रक्रिया है, जिसकी वजह से इस क्षेत्र का किसान, कृषि पर पूर्ण रूप से निर्भर न रहकर पशुपालन करके अपनी आजीविका चलाने की कोशिश करता है। सिंचाई के साधन बहतु कम हैं तथा अधिकतर खेती वर्षा पर ही आश्रित है। इस क्षेत्र के चराई क्षेत्र लगभग क्षीण हो चुके हैं, चारे के अभाव में इस क्षेत्र के छोटे पशुओं का साल के अधिकतर महीनों में पलायन (माइग्रेशन) कर दूसरे प्रदेशों में चराई करने जाना आम बात है। उपलब्ध आंकडों के आधार पर इस क्षेत्र की चारा मांग एवं आपूर्त्ति के बीच 30 प्रतिशत की चौड़ी खाई है तथा जो भी चारे उपलब्ध हैं उनकी गुणवत्ता भी ज्यादा संतोषजनक नहीं है। जानवरों की उच्च उत्पादकता एवं छोटे जानवरों की पलायन की प्रवृत्ति को रोकने के लिये यह आवश्यक है कि चरागाह विकास एवं चारा उत्पादन के विभिन्न पहलूओं पर गम्भीरता से विचार करते हुये, वे सभी उपाय किये जायें जिससे कि चारे की मात्रा तो बढ़े ही, साथ ही उसकी गुणवत्ता एवं पौष्टिकता भी बढ़े। इसके लिये पशुपालकों को वैज्ञानिकों की सलाह के मुताबिक कृषि क्रियाओं को अपनाना आवश्यक है।

क्षीण चरागाहों को विकसित चरागाहों में बदलना होगा, चाहे वह चरागाह गोचर भूमि पर हो, ओरण भूमि पर हो, सामुदायिक भूमि पर हो अथवा किसान की व्यक्तिगत भूमि पर हो। दूसरा कृषि भूमि अथवा सामुदायिक भूमि पर चारा पैदा करने वाले वृक्षों एवं झाड़ियों को अधिक से अधिक संख्या में लगाना होगा। तीसरा किसान को अपनी निजी भूमी का कुछ भूखण्ड चारे के लिये निश्चित करना होगा तथा ऐसे प्रयास भी करने होंगे कि दाने एवं अन्य फसलें जिनका चारा पशु खाते हैं, का प्रति इकाई क्षेत्र फसल में शुष्क पदार्थ (बाइ प्रोडक्ट) का हिस्सा दाने की तुलना में बढ़ाना होगा। इन्ही बातों को ध्यान में रखते हुए इस लेख में विभिन्न उन्नतशील तकनीकियों पर प्रकाश डाला गया है।

उन्नत चरागाह स्थापन एवं उसकी देखभाल

जानवरों से सुरक्षा

जिस भूमि में चरागाह स्थापन करना है, सर्वप्रथम आवश्यकता उस क्षेत्र पर सभी प्रकार के पालतु व जंगली जानवरों का प्रवेश बंद करने के प्रबन्ध आवश्यक हैं। खेत के चारों तरफ खाई 3 फीट ऊपर चौडाई व 3 फीट गहराई तथा 2 फीट नीचे चौड़ाई में खोद देनी चाहिए। इसके अलावा पाला की झांड़ी अथवा अन्य कांटेदार झाड़ी खेत के चारों तरफ लगाकर बाहरी जानवरों का प्रवेश रोका जा सकता है। कम से कम एक वर्ष तक चरागाह स्थापन वाले क्षेत्र में पशुओं को घुसने से रोकना अति आवश्यक है, नही तो चरागाह स्थापित होने से पूर्व ही खत्म हो सकता है।

खेत की तैयारी

जिस भूमि में चरागाह स्थापन करना हो उसमें सर्वप्रथम अवांछित झाड़ियों को हटाना आवश्यक है। यदि उपलब्ध हो तो 8–10 टन/है. की दर से गोबर की सड़ी खाद अथवा मैंगनी की खाद डालकर कल्टीवेटर द्वारा

जुताई करके उसे अच्छी तरह से मिट्टी में मिला दें। दीमक की सम्भावना होने पर आखिरी जुताई से पूर्व 20–25 कि.ग्रा./है. मिथाइल पैराथियॉन पाउडर का एक समान बुरकाव कर देना चाहिए। यदि भूमि धोरे युक्त ऊँची–नीची है तो जुताई हमेशा ढाल के विपरीत दिशा में समोच्य रेखा पर करनी चाहिए।

उन्नत किस्मों का चयन

सभी घासों की विकसित की गई उन्नतशील किस्में तालिका 1 में दी गई हैं। इस संस्थान में किये गये अनुसंधान के आधार पर धामन की काजरी–75 तथा सेवन की काजरी – एम 30–5 किस्मों द्वारा उच्चतम पैदावार प्राप्त हुई। किस्म का चुनाव भूमि के प्रकार तथा क्षेत्र के लिये की गई किस्म की सिफारिश के आधार पर करना चाहिए।

बीज की मात्रा एवं बीजोपचार

बीज की मात्रा अलग–अलग घासों की अलग अलग है जो बीज के आकार एवं वजन के आधार पर होती है। विभिन्न घास प्रजातियों के लिये संस्तुत बीज की मात्रा तालिका 2 में दी गई है। बीजोपचार सर्वप्रथम 15–20 ग्राम वैविस्टिन पाउडर को प्रति किग्रा बीज के हिसाब से हाथ से या बीजोपचारित करने वाले सीड ट्रीटमेंट ड्रम में डालकर अच्छी तरह से मिला देना चाहिए। यदि खेत में दीमक आदि की सम्भावना हो तो 10–15 मिलीलीटर प्रति किलोग्राम के हिसाब से डरमेट (क्लोरोपाइरीफॉस) दवा को डालकर अच्छी तरह से मिला देना चाहिए।

बीज शोधन

घास का बीज बहुत हल्का एवं छोटा होता है। अतः इसकी बुआई करने के समय बीज का उचित वितरण हेतु बीज शोधन अति आवश्यक है। बीज शोधन बीज की बुआई की विधि पर निर्भर करता है। कुछ मुख्य बीज शोधन विधियों का संक्षेप में वर्णन इस प्रकार है :–

1. सीधे बीज की बुआई

सीधे बीज की बुआई कूँड में करने हेतु घास के बीज एंव गीली रेत को 1:5 के अनुपात में मिलाकर सीधे कूँड में बीजों की बुआई कर दी जाती है। इसके बाद हल्की मृदा कूँड में डाल दी जाती है।

2. गोली विधि द्वारा

मरू क्षेत्र की मृदा में सूखी बुआई हेतु बीज की गोलियाँ (पैलेटस) बनाकर भी बुआई की जा सकती है । इस प्रकार की बुआई में वर्षा ऋतु आने से पहले बीज की गोलियाँ बना ली जाती है। गोलियाँ बनाने हेतु केन्द्रीय रूक्ष क्षेत्र अनुसंधान द्वारा विकसित तकनीक का प्रयोग करते है। इसमें घास बीज + फार्म यार्ड खाद+ चिकनी मिट्टी+बालू को 1:1:3:1 के अनुपात में मिला दिया जाता है। इस मिश्रण को पानी से गीला करके पारम्परिक विधि जिसमें छाजले की सहायता से छोटी––छोटी गोलियाँ बनाई जाती है किन्तु इस विधि में समय एवं मजदूर अधिक लगने के साथ–साथ गोलियों का आकार भी समान नहीं होता। इससे जमाव प्रतिशतता में अन्तर आ जाता है । केन्द्रीय मरू अनुसंधान संस्थान ने गोलियाँ बनाने की एक मशीन विकसित की है। इसमें मिश्रण को डालकर फव्वारा मशीन (स्प्रेयर) से पानी मिलाने के साथ–साथ मशीन को घुमाते हैं जिससें कम समय में आवश्यक आकार की गोलियाँ प्राप्त हो जाती है। इन गोलियों का आकार 0.5 से 1.0 सेमी. व्यास से ज्यादा नहीं होनी चाहिए। इन गोलियों को धूप में सुखाकर बुआई हेतु प्रयोग करते है। चार किग्रा. सूखी गोलियाँ (5–7 मिमी. ब्यास) की बनाने के लिए पैलेटिंग मशीन 4–5 मिनट का समय लेती है। 4 किग्रा. गोलियाँ बनाने हेतु मिश्रण का निम्न अनुपात प्रयोग में लाया जाता है :

1.	धामण घास	125–150 ग्राम
2.	चिकनी मिट्टी पाडडर	3 किलोग्राम
3.	फार्म– यार्ड– खाद	500 ग्राम
4.	बालू	500 ग्राम

20.0 किलोग्राम सूखी गोलियों को 4 मजदूर एक दिन में बना देते हैं। इस प्रकार बनी गोलियों में घास का 2–3 बीज पाया जाता है तथा 60–80 किलोग्राम प्रति हैक्टयर बुआई हेतु पर्याप्त है। इन गोलियों से बुआई छिड़काव द्वारा भी की जा सकती है। गोलियों की बुआई 1–2 सेन्टीमीटर गहराई पर होनी चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

चरागाह के अन्दर यदि बुवाई के समय 8–10 टन गोबर की सड़ी खाद का प्रयोग किया जाता है तो उस समय कोई अन्य रासायनिक खाद का इस्तेमाल करने की आवश्यकता नहीं है। यदि बिना खाद के सीधी बुवाई की जाती है तो बुवाई के समय 20 किग्रा नत्रजन तथा 40 किग्रा फास्फोरस प्रति हैक्टर डालने की आवश्यकता होती है। घास निकलने के एक से डेढ़ महीने बाद फिर से 20 किग्रा नत्रजन प्रति हैक्टर की दर से छिड़क (टौप ड्रैसिंग) देना चाहिए। रासायनिक खाद के इस्तेमाल करते समय ध्यान रखना चाहिए कि खेत में पर्याप्त नमी हो, लेकिन पानी भरा न हो, नहीं तो नत्रजन जमीन की नीचे की परतों में चली जायेगी तथा पौधो की जड़ों की पहुंच से दूर हो जायेगी। नत्रजन तथा फास्फोरस के इस्तेमाल से चारे की पैदावार के साथ साथ गुणवत्ता में भी सुधार होता है। उपरोक्त दोनों ही कार्बनिक तथा अकार्बनिक खादों के साथ जैव उर्वरकों द्वारा उपचारित करने पर भी विशेष ध्यान देना चाहिए।

बुवाई का समय एवं विधी

सामान्यतः घासो की बुवाई पहली बरसात यानी जून–जुलाई के महीने में ही की जाती है। सिंचाई की सुविधा उपलब्ध होने पर शरद ऋतु के महीने को छोड़कर कभी भी घासों की बुवाई की जा सकती है। घास के बीज की बुवाई करते समय जो सबसे अधिक ध्यान देने योग्य बात है, कभी भी बीज के ऊपर 2 सेमी. से अधिक मोटी मिट्टी की तह नहीं पड़नी चाहिए क्योंकि इससे बीज अंकुरण बाधित होता है।

सिंचाई एवं नमी प्रबन्ध

सामान्यतः चरागाह का विकास वर्षा पर ही आधारित रहता है तथा शुष्क क्षेत्रों में सिंचाई के लिये उपलब्ध पानी को घासों के लिये इस्तेमाल के बारे में सोचा भी नहीं जा सकता है। यदि घासों के लिये जीवन रक्षक सिंचाई के लिये पानी उपलब्ध हो तो जाड़ों के दो तीन महीनों को छोड़कर कभी भी घास की पैदावार ली जा सकती है। घासों में फव्वारा सिंचाई पद्धति के अच्छे परिणाम मिले हैं। घासों में सिचाई की सम्भावना कम होने की वजह से नमी संरक्षण का अधिक महत्व है तथा शुष्क क्षेत्र की अधिकतर जमीन धोरों (टीले) युक्त है, अतः नमी संरक्षण हेतु समोच्य कूँड बनाकर काफी हद तक पानी के बहाव को रोककर नमी संरक्षित की जा सकती है। इसके अतिरिक्त जगह–जगह फावडे. या काजरी, जोधपुर द्वारा निर्मित डिस्कर से गड्ढे बनाये जा सकते हैं। काम न आने वाले फसलों के अवशेष भी जमीन पर फैलाकर नमी के वाष्पीकरण को रोका जा सकता है।

खरपतवार प्रबन्ध

अन्य फसलों की तरह ही खरपतवार चरागाह की उत्पादकता एवं गुणवत्ता को भी खराब करते हैं । कभी–कभी खरपतवार का इतना प्रकोप होता है कि बोई गई घास को समूल नष्ट करके खेत में इन्ही का वर्चस्व होता है। इसलिये बरसात शुरू होने के एक महीने के अन्दर यानी जुलाई के महीने में कम से कम एक बार निराई करके खरपतवार तथा अन्य अवांछित झाडियों को साफ कर देना चाहिए। यदि श्रमिको द्वारा निराई सम्भव न हो तो 0.5 किग्रा सक्रिय तत्व प्रति हैक्टर की दर से 2, 4–डी सोडियम साल्ट की मात्रा का छिड़काव करना चाहिए जिससे चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार नष्ट हो जाते हैं। चरागाह से जुलाई–अगस्त के महीनों में कम से कम एक बार अवांछित झाड़ियों को हटवाना अति आवश्यक है।

कीट एवं व्याधि प्रबन्ध

चरागाह में सामान्यतः कीट का प्रकोप नहीं होता है। हालाँकि कभी–कभी दीमक चरागाह को नुकसान पहुंचाती है, जिसे खेत की जुताई के समय ही 20–25 किग्रा/है. की दर से मिथाइल पैराथियान या एन्डोसल्फान

पाउडर का बुरकाव करके नियन्त्रित किया जा सकता है। यदि बीज बुवाई के समय फफूंदनाशक से उपचारित किया गया हो तो फसल में बीमारी की सम्भावना भी बहुत कम रहती है। यदि फिर भी कोई बीमारी आती है तो तुरन्त विशेषज्ञ से सलाह लेकर उसका नियंत्रण करना चाहिए।

घास की कटाई

चरागाह स्थापन के प्रथम वर्ष में चराई की सिफारिश नहीं की जाती है तथा बीज झड़ने के बाद 4–5 इन्च की ऊँचाई से घास की कटाई करके सीधे ही अथवा कुत्तर करके जानवरों को खिलाने के काम में ली जा सकती है। यदि चारे अथवा फल वाले पेड़ भी चरागाह में लगाये गये हैं या वन चरागाह पद्धति अपनाई गई है तो जब तक पेड़ चराये जाने वाले जानवरों की पहुँच से दूर नहीं हो जाते तब तक घास को काट कर ही खिलाना चाहिए अन्यथा जानवर पेड़ों को हानि पहुंचाते हैं। सामान्य रूप से गुणवत्ता एवं उपज के हिसाब से घास को फूल आने पर काट लेना चाहिए। अच्छे चरागाह द्वारा प्रति हैक्टर 100 क्विंटल तक सूखा पदार्थ प्रति वर्ष प्राप्त किया जा सकता है।

घास आधारित अन्तः सस्यन

मरू क्षेत्रीय बारानी क्षेत्रों में घास के साथ–साथ दलहनी फसलों की मिलवां खेती एक पारम्परिक पद्वति के रूप में सदियों से अपनाई जाती रही है। अनुसंधानों के आधार पर सुधरी खेती के रूप में कृषि में मशीनीकरण को ध्यान में रखते हुए वैज्ञानिकों ने घास के साथ दलहनी फसलों की बहुफसलीय सस्यन पद्धति का विकास किया है। जैसे सेवण, घामण, मोडाधामण, ग्रामना आदि के साथ मरू क्षेत्रीय दलहनी फसलों (मोठ, ग्वार, मूंग) को अन्तःसस्यन के रूप में सफलतापूर्वक अपनाया जा सकता है । इन दलहनी फसलों की उपज (1–2 कि0/ है.) प्राप्त होने के साथ साथ अकेली घास की तुलना में 17 – 37 प्रतिशत सूखे चारे का उत्पादन अधिक मिलता है।

उपरोक्त घासों को पट्टीदार सस्यन के अन्तर्गत दलहनी फसलों के साथ–साथ उगाया जा सकता है। इसके लिए 3 मीटर घास की पट्टियाँ 18 मीटर के अन्तराल पर समानान्तर लगाई जाती है। बीच में 18 मीटर के रिक्त स्थान में दलहनी फसलों की बुआई की जाती है। घास बहुवर्षीय होने के कारण इस विधि का मुख्य लाभ यह है कि बिना घास को नुकसान पहुँचाये हुए टेक्टर से फसलों की बुआई की जा सकती है तथा अप्रेल से जून माह तक खेत खाली होने से घास की लगी पट्टियाँ वायु द्वारा मृदा अपरदन को रोकती है एवं खेत की उपजाऊ मिट्टी खेत में बनी रहती है। इसके साथ–साथ यदि वर्षा न होने से अकाल पड़ जाये तो भी दलहनी फसलों की पूर्ण फसल नष्ट होने के बावजूद घास द्वारा चारे की पैदावार मिलती रहती है।

घास संरक्षण

घास कटने के बाद दो तीन दिन तक खेत में ही पड़े रहने दें तथा उसे उलटते–पलटते रहें। इसके बाद जब घास पूरी तरह से सूख जाय उसकी छोटी छोटी पूली बांध लें तथा सम्भव हो तो ऐसी जगह इसका भण्डारण करें जहां पानी, नमी तथा धूप से बचाया जा सके। यदि ऐसा स्थान उपलब्ध नहीं हो तो किसी ऊँचे स्थान पर जहां पानी इकट्ठा न होता हो घास की पूलियों को इस तरह से लगायें कि नीचे चौड़ा तथा ऊपर संकरा शंकू का रूप ले, ताकि बरसात का पानी सीधा नीचे बह जाये। इसमें दीमक से बचाव के लिये ढेरी के नीचे मिथाइल पैराथियान पाउडर बुरक लें तथा उसके ऊपर कुछ खराब चारा डाल लें ताकि इसका प्रभाव घास के बंडलों पर न पड़े। सूखी घास की कुत्तर कराकर भी छाया में रखी जा सकती है।

चरागाह प्रबन्धन के मुख्य बिन्दु

चरागाह स्थापन के बाद इसकी उचित देखभाल तथा अन्य प्रबन्ध करना अति आवश्यक है। इससे चरागाह दीर्घावधी, अच्छी गुणवत्ता तथा अधिक उपज देने वाला बना रहता है। चरागाह प्रबन्ध के लिये ध्यान देने योग्य बातें निम्न है –

चरागाह को अति चराई से रोकने हेतु चराई की उन्नत तकनीकी का इस्तेमाल किया जाय जैसे चक्रवत

चराई, स्थगित चक्रवात चराई अथवा नियंत्रित लगातार चराई। चक्रवत चराई में चरागाह को 4 भागों में बाँट लिया जाता है तथा सभी में बराबर समय चराई की जाती है। एक की चराई के समय बाकी तीन हिस्से बन्द रखे जाते हैं। जिससे कि घास के विकास के लिये प्रत्येक हिस्से को पर्याप्त समय मिल जाता है। स्थगित चक्रवत चराई में चरागाह को पांच भागों में बांटा जाता है जिसमें चार हिस्सों में चराई पूरे वर्ष बारी–बारी से कराई जाती है तथा पांचवा भाग पूरे वर्ष बन्द कर बीज बनने के लिये छोड़ दिया जाता है। इसी प्रकार पांच वर्ष के अन्दर प्रत्येक हिस्से की बारी आ जाती है। लगातार नियंत्रित चराई में चरागाह की क्षमता के अनुसार जानवरों को लगातार चराई कराई जाती है। यदि किसी भी समय लगता है कि घास की बढ़वार तथा चरागाह में वांछित घास की संख्या घट रही है तो उसे कुछ समय के लिये चराई से रोक दिया जाता है तथा घास के उचित विकास हेतु उसकी देखभाल की जाती है।

चरागाह की अच्छी गुणवत्ता तथा अधिक उपज हेतु बरसात शुरू होने के बाद जब खेत में पर्याप्त नमी हो 20 किग्रा नत्रजन यानी 43 किग्रा यूरिया प्रति हैक्टर की दर से दो बार छिड़ककर देना चाहिए।

चरागाह यदि काफी पुराना है तथा उसके बूझे सूखने शुरू हो गये हैं तथा जानवर भी उनका इस्तेमाल नहीं कर पा रहे हैं तो उन्हे हल्का सा जलाकर कल्टीवेटर चला दें तो चरागाह के बूझे की अच्छी फुटान होती है तथा दबे हुए बीज का अंकुरण भी हो जाता है। जो मुख्य बात है चरागाह के विकास में कि चरागाह का नियमित भ्रमण कर उसकी जांच की जाती रहनी चाहिए ताकि कीट के आक्रमण का, बीमारी का तथा चरागाह में उपलब्ध वनस्पती का बारीकी से अध्ययन किया जा सके। यदि वांछित घास के अलावा दूसरी अवांछित वनस्पति बढ़ गई है तो उसे निराई द्वारा निकालना चाहिए। इसके अतिरिक्त चरागाह पर जानवरों का दबाव उतना ही डालना चाहिए जितना वह सह सके। अति चराई हमेशा चरागाह के लिये नुकसानदायक होती है।

गौचर एवं औरन विकास

सर्वप्रथम गोचर एवं औरन विकास के लिए सामाजिक जनचेतना की आवश्यकता है। ऐसा सोचना कि इसका पुनरोद्धार नहीं हो सकता या सेवण, धामण, मुरठ जैसी घासें पुनः इन क्षेत्रों में नहीं लगाई जा सकती है ऐसी विचारधारा को बदलना अति आवश्यक है। औरन क्षेत्रों में जुताई यंत्रों का प्रयोग निषेद्ध है, क्षेत्र के पेड़ों की कटाई–छंटाई नहीं कर सकते। ऐसी सोच में बदलाव लाकर ही क्षेत्रों का विकास किया जा सकता है। औरन एवं गोचर के विकास हेतु सर्वप्रथम सम्पूर्ण क्षेत्र को प्रबंधकीय क्षमता के आधार पर छोटे/बड़े भागों में बांट देना चाहिए। जिससे क्षेत्र की तैयारी, बुआई एवं रखरखाव में आसानी हो। क्षेत्र की बाड़बंदी करके विकास किये जाने वाले क्षेत्र को सुरक्षित कर दें जिससे उसमें एक वर्ष तक घुमंतू जानवरों द्वारा घास का नुकसान न हो। क्षेत्र में बहुवर्षीय झाड़ियों को आवश्यकतानुसार कटाई करें एवं ट्रैक्टर आदि से क्षेत्र की जुताई प्रथम वर्षा के बाद करें। इससे मृदा पोली एवं भुरभुरी होने के साथ ही साथ अनावश्यक उगी हुई वनस्पतियां एवं खरपतवार नष्ट हो जायेंगें तथा वर्षा का पानी मृदा में गहराई तक संरक्षित हो सकेगा।

आरक्षित क्षेत्र की तैयारी पश्चात् उगाई जाने वाली बहुवर्षीय घास के बीज का चुनाव एवं शोधन करके वर्षा पश्चात् ट्रैक्टर से बुवाई करें। इसके लिए सेवण या धामण के 5–6 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर के हिसाब से प्रयोग करें। बुआई से पूर्व घास के बीज को अर्द्धगीली मृदा (बालू) में खेत में ही मिलाकर बीज एवं मृदा के अनुपात इतना हो कि एक मुट्ठी मृदा में 6–7 बीज अवश्य रहें। अब बीज मिश्रित मृदा को बोरी में भरकर कल्टीवेटर द्वारा कुंड निकालकर 60 से.मी. की दूरी पर निकाली गई कूंडों में बुआई करें एवं हल्का पाटा लगायें। बीज में बी.एस.सी. पाउडर या कोई भी कीटनाशक पाउडर 100 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से आवश्यक मिलायें। बुवाई के पश्चात् एक माह बाद एक निराई अवश्य करें एवं एक साल तक पशुओं को चराई के लिए न छोड़े। दूसरे वर्ष उपरान्त पशुओं को चराई के लिए छोड़ा जा सकता है। किन्तु यह ध्यान रहे कि औरन एवं चारागाह क्षेत्र में पशुओं द्वारा अत्यधिक चराई न करावें एवं पूरे क्षेत्र को विभिन्न भागों में बांटकर एकान्तर चराई पद्धति का प्रयोग करें। ऐसा करने से क्षेत्र में प्रति

इकाई घास चारे का उत्पादन बढ़ता रहेगा।

तालिका 1 घास एवं दलहनों की उन्नतशील प्रजातियां

क्र.सं.	घास का नाम	उन्नतशील प्रजातियां
1.	सेवन घास (लैजाइरस सिन्डीकस)	काजरी एम 30–5, काजरी 318, काजरी 19, एम 20, काजरी 324
2.	अन्जन घास (सेन्चरस सिलिएरिस)	मारवाड अन्जन, काजरी 75, काजरी 358, काजरी 1106,
3.	धामन घास (सेन्चरस सेटीजेरस)	मारवाड धामन काजरी 76, स्थानीय किस्में
4	ब्लूपेनिक (पेनिकम एन्टीडोटेल)	काजरी 331, काजरी 333, काजरी 347, एस 225, एस 29, एस 33
5	मुरट (पेनिकम टर्जीडम)	स्थानीय किस्में

तालिका 2. महत्वपूर्ण घासों एवं दलहनों की कृषि–क्रियाएं

घास का नाम	बुवाई का समय	बीज की मात्रा (कि./है.)	बुवाई की दूरी (सेमी.)	उर्वरको की मात्रा (किग्रा./है.)	उपज (क्वि/है.)
सेवन	जून–जुलाई फरवरी–मार्च	6–7	50X75	नत्रजन 40 फास्फोरस 40	80–100
अन्जन	उपरोक्त	4–5	50X50	उपरोक्त	70–80
धामन या बफल	उपरोक्त	4–5	50X50	उपरोक्त	65–70
ब्लू पेनिक	जून जुलाई	2–2.25	50X50	उपरोक्त	80–100
मुरट	जून जुलाई	2–2.25	50X50	नत्रजन 20 फास्फोरस 20	60–70

स्थानीय झाड़ियों का कृषि प्रणाली में समावेश

शुष्क क्षेत्रों में स्थानीय झाड़िया परम्परागत खेती का अभिन्न अंग रही है। इन झाड़ियों में स्थानीय जलवायु के अनुरूप कम व अनियमित वर्षा, सूखा, अधिक चराई दबाब आदि वहन करने की अद्भूत क्षमता है। यहाँ फोग, बोरड़ी, बावली, लाणा, केर, इन्नी, मुराली, कंकेड़ा, हिगोंट आदि झाड़िया पायी जाती हैं। इसके साथ ही लवणीय मृदाओ में लवणोदभिद झाड़ियॉ जैसें खारा लाना, गोरालाना/लानी, लूनी आदि पायी जाती है। इन सभी प्रजातियों का अपना अलग–अलग प्राकृतिक परिवेश है। उदाहरण के तौर पर फोग व बांवली मुख्यतः रेतीले धोरों पर होती है। लाणा रेतीली जमीन व धोरों पर सीमित क्षेत्र में ही पायी जाती है। इन्नी व कंकेड़ा अधिकांशतः खेतों की मेढ़ पर मिलती है। सूखे और अकाल के समय इन झाड़ियों का महत्व और भी बढ जाता है, क्योंकि कम वर्षा व सूखें का दूसरी वनस्पतियों की अपेक्षा इन पर कम प्रभाव पड़ता है । इन विकट परिस्थितियों में ये पशुओं विशेषकर भेड़ बकरी व ऊँटो के लिए हरे चारे का मुख्य स्रोत्र है । इन झाड़ियों में पोषक तत्वों व खनिज पदार्थों की मात्रा औसत तुल्यता से अधिक पायी जाती हैं जो कि पशुओं के लिए पर्याप्त है। अतः जब घास सूख जाती है तो पशुओं में प्रोटीन की कमी को पल्लव चारे से पूरा किया जा सकता है। प्राचीन काल से ही पशुपालक बोरड़ी का पाला व फोग का लासू इकट्ठा करते रहे हैं, जो कि सामान्य एवं सूखे की स्थिती में दूसरे चारों के साथ मिलाकर पशुओं को खिलाया

जाता है। लासू में 7.4 प्रतिशत प्रोटीन होती है तथा अन्य पोषक तत्व भी प्रचुर मात्रा में होते है। लाणा वाले क्षेत्रो में पशुपालक दिसम्बर माह में इसकी फूली बीजो वाली ऊपरी शाखाओं को काटकर इकट्ठा करते हैं और विशेषकर ऊँटों को खिलाते हैं। बावली झाड़ी से भी खेजडी की लूँग की तरह ही सूखी पत्तियाँ इकट्ठी करते हैं। इसके अलावा ये झाड़ियां मृदा संरक्षण एवं पर्यावरण संरक्षण में नितान्त आवश्यक है।

कृषि वानिकी द्वारा चारा उत्पादन

कृषि वानिकी का तात्पर्य एक ही भूमि पर वृक्ष एवं फसलों की सहफसली खेती से उपज प्राप्त करना है। वन पौधों के साथ कृषि फसलों को उगाने की पुरानी विधि का नया नाम ही कृषि वानिकी है। अनुसंधानकर्ताओं का मानना है कि खेती योग्य भूमि पर फसलों के साथ–साथ वृक्षों को क्रमबद्ध तरीके से उगाना ही कृषि वानिकी है। अतः कृषि वानिकी के लिए यह आवश्यक है कि फसलों के साथ–साथ ऐसे बहुवर्षीय वृक्ष लगायें, जो कि चारा व लकड़ी देते हैं तो यदि फसल किसी कारण नष्ट भी हो जाती है तो वृक्षों से कुछ न कुछ मात्रा में लकड़ी व पशुओं के लिए चारा अवश्य मिल सके।

अति शुष्क पारिस्थितीकीय तंत्र में कृषि वानिकी

इस क्षेत्र में मुख्यतः खेजड़ी के वृक्ष पाए जाते हैं। इनकी संख्या 10–20 वृक्ष प्रति हैक्टर पाई जाती है । इन क्षेत्रो में सेवन घास मुख्य रूप से पाई जाती है। इस क्षेत्र में पशु पालन लोगों का मुख्य आय स्त्रोत है । सेवन से लगभग 20–30 क्वि./ है./वर्ष सुखी घास मिलती है। हांलाकि उचित प्रबंधन से इसकी उपज 40–50 क्वि. प्रति हैक्टयर तक बढ़ाई जा सकती है।

टिब्बे पर कृषि वानिकी

पश्चिम राजस्थान में लगभग 58 प्रतिशत क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के टिब्बे पाए जाते है। इन टिब्बों पर छितरे रूप में पौधे पाए जाते है । इनमें बावली फोग आदि प्रमुख है। टिब्बे पर खरीफ में बाजरा एवम् ग्वार की खेती की जाती है। हालांकि मृदा अपरदन एवम् बरसात की कमी से कई बार यहां फसलों से कोई भी उपज नहीं मिल पाती। किसानों को ऐसी जगह से रू. 1500–2000 प्रति हैक्टयर की आय बमुश्किल से मिल पाती है। काजरी ने इसको रोकने के लिए एक मॉडल विकसित किया है जिसमे वृक्षों की 5 कतारें लगाकर 50 मी. दूरी छोड़ी जाती है। इसके बाद फिर 5 कतारें वृक्षों की लगाई जाती है बीच की 50 मी. पट्टी में घास एवम् फसलें ली जाती है। इस विधि से अधिक उपज एवम् मृदा संरक्षण भी होता है।

रेतीले मैदानों में कृषि वानिकी

कम वर्षा वाले क्षेत्रों में (150–300 मि.मी.) कुमुट के 10–20 वृक्ष प्रति हैक्टयर पाए जाते है। इसके साथ बाजरा की उपज ली जाती है। प्रति वृक्ष 1 कि.ग्रा. तक बीज की उपज ली जा सकती है, जिसका बाजार मूल्य रू. 20 प्रति किलों है । काजरी जोधपुर द्वारा विकसित इथोफोन का टीका देने से कुमट में गोंद की मात्राा बढाई जा सकती है जिससे किसानों की आय को दोगुना किया जा सकता है ।

इन क्षेत्रों में खेजड़ी के 30–50 प्रति है. वृक्षों को भी खेतों पर रखा जाता है । इन वृक्षों से खाने के लिए सब्जी (सांगरी) एवम पशुओं के लिए चारा (लूंग) लिया जाता है । इन क्षेत्रों में बोरड़ी के साथ बाजरा भी लिया जाता है । बोरड़ी कों बाड़ के रूप में उपयोग करते हैं। बाजरा की कटाई के उपरांत बोरड़ी को जमीन से काट कर सुखा लिया जाता है जिसको बाद में अभाव के समय चारे (पाला) के लिए उपयोग किया जाता है। इस पद्धति का भी काजरी जोधपुर की दी हुई तकनीक से सुधार किया जा सकता है। इसमें बोरड़ी के उपर गोला और सेब प्रजाति बेर की बडिंग की जाती है। इससे दूसरे साल में बेर की उपज 30 किग्रा.प्रति वृक्ष हो जाती है।

वन चारागाह पद्धति

ग्रामीण क्षेत्रों में चारे की आपूर्ति के लिये वनीय एवं सामाजिक पशु चारागाहों पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। इन चारागाहों में तेजी से बढ़ने वाली चारा झाड़ियों जैसे बोरड़ी, वृक्षों तथा उन्नत घास किस्मों को लगाकर पैदावार बढ़ाई जा सकती है। वृक्षों में बहु–उद्देशीय पौधों को प्राथमिकता दी जाती है जिससे कि भोजन, ईंधन, लकड़ी, फल, गोंद आदि उत्पाद भी प्राप्त होते रहते हैं।

□

उष्ट्र की विभिन्न शारीरिक अवस्थाओं के अनुरूप प्रबन्धन

डॉ. सज्जन सिंह, डॉ. फतेह चन्द टुटेजा व डॉ. एन. वी. पाटिल
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

भौगोलिक दृष्टि से भारत एक सुन्दर देश है। इसके उत्तर में हिमालय दक्षिण में समुन्दर पश्चिम में रेगिस्तान व पूर्व में पहाड़ी जंगल देश की खुबसूरती को चार चाँद लगा देते हैं। रेगिस्तान की शुष्क भूमि व कठोर पारिस्थितियों में अपनी अनुकुलता स्थापित कर चुका, उष्ट्र इस क्षैत्र के लिए एक महत्वपूर्ण व कीमती आनुवांशिक संसाधन है। जहाँ चारे व पानी के अभाव में अन्य पशु प्रजातियों की उत्पादन क्षमता नाकारत्मक रूप से प्रभावित होती है। ऊँट अपनी उत्पादन क्षमता को बनाए रखने में सक्षम है। अद्वितिय शरीर क्रियाओं के कारण ऊंट शरीर भार के अनुपातीत सामान्य दरों से कही अधिक शरीर क्रिया परिवर्तन को आसानी से सामान्य रहते हुए मुश्किल व शत्रुतापूर्ण वातावरण के लिए अनुकूल है। भार वाहक रेगिस्तानी पशु के रूप में पहचान बना चुका ऊँट आज अपनी पहचान को बनाए रखने के लिए परिस्थितियों से संघर्षरत है। आधुनिकता के इस विकासशील दौर ने अन्य प्राणियों की अपेक्षा ऊँट को अधिक प्रभावित किया है। कृषि क्षेत्र में बढ़ते मशीनीकरण ने ऊँट को नकारा व निकम्मा बना दिया। जलवायु परिवर्तन भी आज ऊँट को प्रभावित कर रहा है। अन्य देशों की तुलना में भारत में ऊँटों की घटती संख्या एक चिन्तनिय विषय है। अपनी पहचान बनाए रखने व ऊँट की घटती संख्या को बनाए रखने के लिए ऊँट की उपयोगिता के अन्य रास्ते तलाशने होंगे। राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान संस्थान के अथक प्रयासों के कारण आज ऊँट ने दुग्ध उत्पादन के क्षैत्र में अपनी एक विशेष पहचान बनाई है। दुग्ध उत्पादन की दृष्टि से हम विश्व विजेता है। लेकिन संख्या व उत्पादकता में आज भी सामन्जस्य नहीं है। उत्पादकता व उत्पादन क्षमता को बढाने के लिए शरीर क्रिया विज्ञान का ज्ञान एक सहयोगी विकल्प है। इस लेख के माध्यम से हम ऊँट में विभिन्न शरीर क्रियाओं व ऊँट के विकास की विभिन्न अवस्थाओं के बारे में ज्ञान प्राप्त करेंगे।

13 महीने के गर्भकाल के उपरान्त मादा ऊँट (उंटनी) एक बच्चे (टोरड़ी) को जन्म देती है। जन्म के समय एक स्वस्थ टोरड़ी एक पतली झिल्ली जो कि प्लास्टिक की एक पतली झिल्ली की तरह होती है, से ढकी रहती है। मादा ऊँटनी (माता) उस झिल्ली को चाटकर उतारती है। नवजात टोरड़िए पैदाईश के समय परिपक्व व आत्मनिर्भर होते है वे कुछ समय उपरान्त उठकर चलने लगते है। टोरड़ियों का जन्म भार लगभग 30-40 कि.ग्रा. होता है।

3-4 साल की आयु तक टोरड़िए अपनी माता के साथ रहते है। जन्म के समय इनकी आँखें खुली होती है व ऊनी बालों से पूरा शरीर ढका रहता है जो कि इसकी ठण्ड से बचाव करता है। ब्यांत का समय शीत ऋतु होने के कारण टोरड़ियों को सर्दी से बचा कर रखना चाहिए अन्यथा मृत्यु दर अधिक हो जाएगी। पैदाईश के समय थोड़े-थोड़े अन्तराल के बाद टोरड़ियों को खीस पिलाना आवश्यक है जो इनकी रोग रोधी क्षमता को बढ़ाता है। परम्परागत तरीके से ऊँट का दुग्ध दौहान अभिशाप के साथ जुड़ा हुआ था। लेकिन विज्ञान के इस युग में ऊँटनी के दुग्ध के ऊपर शोध कार्यों ने सिद्ध कर दिया कि ऊँट का दुग्ध अन्य पशु प्रजातियों की अपेक्षा कही अधिक गुणकारी व स्वास्थ वर्धक है। आज ऊँट के दुग्ध की मांग व खपत बढ़ी है जिसके परिणाम स्वरूप इसका दौहान होने लगा है तथा इसने अपनी गुणवता स्थापित कर स्वास्थ्य वर्धक पेय के रूप में अपनी अलग पहचान बनाई है। अन्य दुधारू पशुओं की तरह ऊँट में भी कई स्थानों पर ऊँट की दुग्ध प्रतियोगिता का आयोजन राष्ट्रीय ऊष्ट्र अनुसंधान केन्द्र द्वारा करवाया गया इसका उद्देश्य उष्ट्र पालकों में दुग्ध उत्पादन की तरफ प्रोत्साहित करना था।

2-3 वर्ष तक दुग्ध पीने के साथ-साथ टोरड़िये अधिक गुणवता वाले आहार को ग्रहण करने लगता है तथा अपने विकास में उचित वृद्धि दर व भार को बनाए रखने का प्रयत्न करता है। हमारे देश में पशुओं के कम उत्पादन के मुख्य कारणों में कुपोषण तथा निम्न पोषण है। उपलब्धता व आवश्यकता विशेष पर ध्यान दे तो हमारे देश में पशु आहार से 10.35% तक सूखा, हरा चारा व दाने की कमी पायी गई है। अधिक

दुग्ध उत्पादन हेतु उचित पोषण व्यवस्था का होना अनिवार्य है। उपयुक्त पोषण एवम् स्वस्थय प्रबन्धन, दुग्ध उत्पादकता बढाने के साथ-साथ टोरड़ियों की विकास दर व किसान के लिए आर्थिक रूप से लाभकारी होगा। अच्छा पोषण और अनुकुल वातावरण ऊँट में जल्दी परिपक्वता लाने में सहायक है। नर ऊँट 3-4 साल की आयु में परिपक्व हो जाता है और 5 साल की उम्र तक पहुँचते- पहुँचते प्रजनन क्रिया शुरू कर देता है। 6 साल की उम्र में नर ऊंट पूर्ण रूप से परिपक्व हो कर अपने यौवन पर होता है तथा वह इस यौवनता का लगभग 20 साल की उम्र तक बनाए रखता है लेकिन इसको प्रभावित करने वाले कारकों में नस्ल, अनुवंशिकी पोषण तथा वातावरण है। एक स्वस्थ नर ऊँट एक काल (अवधि) 20 से 50 मादा ऊँटनियों के साथ प्रजनन करता है। कामोत्तेजना काल (झूठ के समय) या मस्ती के समय ऊंट के पौरुषय हार्मोन की मात्रा अधिक होती है जो कि खून में प्रवाहित होने के साथ-साथ पेशाब व पोल ग्रन्थी में अपनी सुगन्ध छोड़ते है जो मादा ऊंट को अपनी ओर आकर्षित करने में सक्षम है। झूठ के समय ऊँट के अण्डकोषों का आकार सामान्य से कही अधिक हो जाता है ऊँट अपने खान-पान में कमी कर देता है तथा अपने शरीर भार को कम कर लेता है। आक्रमण रुख अपनाते हुए ऊँट दादागिरी की मुद्रा में अपने आपको पेश करता है। बार-बार पेशाब करना व उसको पूंछ के द्वारा छिड़कना इस काल में आम प्रक्रिया है। मादा को देखकर गुल्ला व मुंह से झाग निकालता है।

मादा ऊँट 3-4 साल की आयु तक परिपक्वता प्राप्त करती है। परिपक्वता के बाद सर्द ऋतु में मादा रम्भना, नर के पेशाब व जनन अंगों का सूंघना, भग का सूजना व कभी-कभी तरल द्रव का जनन अंगों से बाहरी प्रवाह गर्मी के लक्षण दर्शाता है। गर्मी के लक्षण प्रदर्शित करने पर नर स्वयं ऐसी मादाओं का चुनाव कर संभोग प्रक्रिया में लिप्त होने के लिए मादा पर गर्दन से दबाव ड़ालकर उसे बैठाने की कोशिश करता है। बैठने पर प्रजनन क्रिया (संभोग) शुरू होता है तथा यह क्रिया लगभग 10-20 मिनट तक जारी रहती है। इस दौरान मादा रामभती रहती है तथा नर मुंह से झाग फेकता रहता है। साधारणत: जनन क्रिया प्राकृतिक तरीके से होती है तथा किसी बाह्य सहायता की आवश्यकता नहीं होती लेकिन कई बार नर लिंग को मादा की योनी में हाथ से दिशा देनी पड़ती है ताकि असफल प्रयासों को कम किया जा सकें। संगठित क्षेत्र के फार्मो (ऊँट) में नर ऊँट के लिए मादाओं को मनोनीत या नामांकित किया जाता है ताकि अभिजाति दस्तावेजों के आंकड़े इक्कट्ठे कर प्रजाति की गुणवता का आंकलन किया जा सके। गर्भ धारण करने की अवस्था में मादा पशु 15 से 25 दिन में नर ऊँट की संगति में पूंछ को ऊपर उठाकर भागती है या नर से अपनी दूरी बनाए रखती है। अन्यथा पूंछ का ऊपर नहीं उठाती। प्रजनन क्रिया काल लगभग दिसम्बर माह से मार्च माह तक चलता है। अगर इस दौरान कोई मादा गर्भधारण नहीं करती है तो उसे दोबारा से ग्याभिन करवाया जा सकता है। आधुनिक खोज द्वारा यह स्थापित किया जा चुका हैं कि अप्राकृतिक रूप से गर्मी के लक्षण पैदा कर दो ब्यातों के अन्तराल को कम किया जा सकता है इस दिशा में आशातीत परिणाम प्राप्त हुए है। संभावनाएँ है कि आने वाले समय में 3 साल में हम 2 बच्चे प्राप्त कर ऊँट संख्या की बढ़ोतरी प्रयासों में सफल होंगे।

गर्भावस्था

मादा प्राय: (99%) तक बायें प्रक्षिप्त भाग (गर्भाश्य का) में गर्भ धारण करती है। दौहरे डिम्ब विशर्जन की सम्भावनाएँ मात्रा 14% ही होती है जो अन्य पशुओं की तुलना में बहुत कम है। जुड़वा बच्चों की पैदाइश संख्या नगण्य है। (मात्र 0.4%) आरम्भीक गर्भावस्था में भ्रूण मृत्यु दर अधिक होती है ऐसा पाया गया है प्रारम्भिक 3 महीने तक लगभग 30% मादा ऊँट जो ग्याभिन होने के लक्षण दिखाती है फुराव करती है यह सम्भवत: जल्द भ्रूण नश्वरता के कारण होता है। गर्भकाल 13 महीने से ऊपर होता है। उष्ट्र प्रजाति के पशु आपस में रोजाना के क्रिया कलाप जैसे झगड़ना, भागना व अठखेलिया करना सामान्य है जिसमें ग्यामिन ऊँटनी को तकलीफों का सामना करना पड़ सकता है। अत: ग्याभिन ऊँटनियों को अन्य पशुओं से अलग रखा जाए विशेष रूप से नर ऊँटों से। गर्भकाल के आखिरी 3-4 महीनों में गाभिन ऊँटनियों को अलग कर उनकी विशेष देखभाल की आवश्यकता होती है। दुधारू गाभिन ऊँटनियों का आखिरी 3-4 महीने में दौहान बन्द कर देना चाहिए क्योंकि इसी दौरान गर्भ में भ्रूण विकसित हो रहा है जिसके लिए अपनी पोषण आवश्यकताएं होती है। गर्भावस्था के अन्तिम 60-90 दिन पोषण की दृष्टि से बहुत ही नाजुक होते है। इन अन्तिम दिनों में प्रोटिन व ऊर्जा की आवश्यकता 20-25% तक

बढ जाती है इस कारण पौष्टिक आहार दिया जाना अति आवश्यक हो जाता है। जो उपरोक्त शारीरिक मागों की पूर्ति कर सके। गर्भावस्था में चरागाह में आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति नहीं हो पाती। अत: इस दौरान 10% प्रोटिन, 68% कुल पाच्य पदार्थ वाला 2 कि.ग्रा. राबित मिश्रण प्रति ऊँट पूरक के रूप में दिया जाना चाहिए।

प्रसूति के दौरान ऊँटनियों की देखभाल

ब्याने से पहले ऊंटनी में बैचनी, बार-बार पेशाब करना, योनि या भंग में सुजन चारा न खाना आदि कुछ लक्षण प्रदर्शित करती है। प्रसूति प्राय: बढने की अवस्था में होती तथा अगले पैर व नथून पहले दिखाई देते हैं। अनेको बार उल्टी अवस्था के कारण ऊंटनी में डिस्टोकिया (बच्चे का बाहर न आना) हो जाता है जिसके कारण माता (ऊँटनी) व बच्चा (टोरड़िया) दोनों खतरे आ सकते है। ऐसी अवस्था में कुशल व्यक्ति या पशु चिकित्सक की सहायता लेनी चाहिए। ऊंटनी में प्रसव पीड़ा बड़ी ही सुस्पष्ट होती है। सुंड़ प्राय: अपने आप गिर जाती है। जेर भी कुछ देर उपरान्त ऊँटनी स्वयं गिरा देती है कई बार ऊंटनी जेर नहीं डालती उस अवस्था में पशु चिकित्सक की राय अनिवार्य है। प्रसूति के बाद ऊंटनी, टोरड़िया व उनके रखने की स्थान की साफ-सफाई अनिवार्य है। कुछ समय उपरान्त टोरड़िया (नवजात) स्वयं उठना-बैठना शुरू कर देता है।

नवजात टोरड़ियों की देखभाल

जन्म के समय एक स्वस्थ टोरड़ियें का भार 35-40 कि.ग्रा. के बीच होता है। कभी-कभी गर्भ के दौरान माता में कुपोषण के कारण नवजात के भार में कमी स्वाभाविक है लेकिन प्रकृति ने ऊंट जनन व प्रजनन इस प्रकार निर्धारित किया है कि गर्भावस्था के दौरान चारा की प्ररचुर मात्रा में उपलब्धता सुनिश्चित हो। जन्म के समय टोरड़ियों का कुबड़ नहीं होता तथा आयु के बढ़ने के साथ ही कुबड़ का विकास होता है। टोरड़ियों में मुख्य समस्या खुजली (Mange), अतिसार, न्युमोनिया, माता आदि मुख्य बिमारिया प्रभावित करती है। इनकी देखभाल करना जरूरी है। नवजात टोरड़ियों में मृत्यु दर (लगभग 50%) अधिक पाई जाती है। टोरड़ियों को खीश पिलाना अति आवश्यक है क्योंकि यह उनकी रोगी रोधी क्षमता को बढ़ाता है। पेट के कीड़े मारने वाली दवाई समय-समय पर पिलाना जरूरी है। अन्य ऊंट से अलग स्थान पर टोरड़ियों को रखा जाना चाहिए ताकि दुसरे जानवर उनकों शारीरिक हानि न पहुचा सके।

उपरोक्त अवस्थाओं का ज्ञान व अवस्थानुसार प्रबन्धन से ऊष्ट्र पालन को एक लाभकारी व्यवसाय बनाया जा सकता है। अत: किसान भाई उपरोक्त विषयों की जानकारी आवश्यक रखे। □

ऊँटों में प्रजनन सम्बन्धित महत्वपूर्ण जानकारियाँ

डॉ. सुमन्त व्यास
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

ऊँटों में प्रजनन ऋतु आधारित होता है। यह वर्ष भर प्रजनन नहीं करता है। इनका प्रजनन सामान्यतया वर्ष की उस अवधि में होता है जब दिन का तापमान कम हो तथा दिन में सूर्य की रोशनी का समय कम हो। भारत में इनके प्रजनन का समय दिसम्बर से मार्च तक होता है।

मादा ऊँट (सांड)

मादा ऊँट या ऊँटनी को "सांड" भी कहा जाता है। ऊंटनी 3–4 वर्ष में वयस्क हो जाती है। ऊँटनी अन्य पशुओं जैसे गाय, भैंस, बकरी आदि से भिन्न होती है। इसमें ऋतु चक्र नहीं होता. प्रजनन काल में मादा ऊँटों में अन्य पशुधन की तरह "हीट' या ईस्त्रस के विशेष लक्षण नहीं होते। राजस्थान के सन्दर्भ में यह माना जाता है कि प्रजनन काल (ब्रीडिंग सीजन) के दौरान मादा ऊँट में फोलिकल हमेशा उपस्थित रहता है यानि कि ऊँटनी समागम (मेटिंग) के लिए तैयार रहती है।

ऊँटनी में गर्भ काल सामान्यतः 390 दिन (लगभग 13 माह होता) है। पारंपरिक तरीके में ऊँटनी एक वर्ष में ग्याभन होती है, दूसरे वर्ष में बच्चा (टोरडा, टोरडी) देती है तथा तीसरे वर्ष में वापस ग्याभन होती है और चौथे वर्ष में दुबारा बच्चा देती है। यानि अगर 01.01.2013 को ग्याभन हुई तो 01.02.2014 को बच्चा जनती है, 01.01.2015 को दुबारा ग्याभन होती है तथा 01.01.2016 को दुबारा बच्चा देती है। इस तरह से दो बच्चों के बीच में लगभग दो वर्ष का अंतराल होता है।

ऊँटपालक एवं पशुचिकित्सक मिल कर प्रयास करें तो यह अंतराल कम हो सकता है। प्रसव के 30–45 दिन में पशुचिकित्सक से जननेंद्रियों की जांच कर यह पता लगाया जा सकता है कि ऊँटनी में फोलिकल उपस्थित है या नहीं। अगर फोलिकल उपस्थित है तो ऊंटनी को गर्भित करने का प्रयास करना चाहिए। इस तरह से दो ब्यात के बीच के अंतर को कम किया जा सकता है। हमारे केन्द्र में शोध द्वारा यह सिद्ध हुआ है कि इस तरह से प्राप्त टोरडे को माँ के दूध की कमी नहीं रहती है। इस तरह से थोड़े से अतिरिक्त प्रयास से ऊँटपालक को अतिरिक्त टोरडा, टोरडी मिल सकता है तथा हमें ऊँटों की घटती संख्या को रोकने में भी सहायता मिलेगी।

नर ऊँट

नर ऊँट 5–6 वर्ष की आयु में प्रजनन योग्य हो जाता है। प्रजनन काल में नर ऊँट जब मस्ती में आता है तो उसे 'रट' या 'झूठ' कहते है। रट के समय ऊँट कोमल तालू में हवा भर कर आधा या एक मिनट तक बाहर निकाल कर एक विशेष प्रकार की आवाज निकालता है तत्पश्चात बाहर निकाला हुआ तालू वापिस मुँह में डाल लेता है, इसे गुल्ला निकलना कहते हैं। रट के समय ऊँट मुँह में से झाग निकालता है व दातों को रगड़ते हुए तीखी आवाज निकालता है। रट के समय ऊँटों के सिर पर दोनों कानों के बीच में पर थोडा पीछे पोल ग्रंथियाँ होती है। इनमें से गहरा भूरा रंग का स्त्राव (तरल पदार्थ) निकलता है जिसमें विशेष प्रकार की दुर्गन्ध होती है। ऐसा कहा जाता है कि यह दुर्गन्ध ऊँटनी को ऊँट की तरफ आकर्षित करती है। रट के समय ऊँट पीछे वाले पैरों को चौड़ा करके खड़ा हो जाता है तथा पूँछ को ऊपर नीचे फटकारता है। इस क्रिया से वह अपने पेशाब को फेंकता है तथा कमर पर भी निशान छोड देता है। यह सभी झूठ के लक्षण हैं। प्रजनन काल में ऊँट चरना कम कर देता है। उनका वजन भी कम हो जाता है। अतः उन्हें ऊर्जा के लिए 2–4 किलोग्राम दाना देना चाहिये। इसके आलावा 500 ग्राम गुड़ व तेल भी 15–30 दिन तक दिया जाये तो उत्तम रहता है।

प्रजनन काल में ऊँट खिजिया जाता है तथा अकेला पाकर मनुष्य पर भी आक्रमण कर देता है, हाथ

व खोपड़ी पर दांत से काटनें के उदाहरण काफी मिलते है। यह ऊँट आपस में भी लड़ पड़ते हैं, तथा एक दूसरे के अंडकोष को हानि पहुंचा देते हैं। इसलिए एक से ज्यादा ऊँट होने पर ऊँटपालक को उन्हें दूर–दूर बांधना चाहिये तथा पूरी सावधानी बरतनी चाहिये। प्रजनन में काम आने वाले ऊँट की समय समय पर वीर्य जांच भी करा लेनी चाहिये। टोले के ऊँट को 3–4 वर्ष में बदल देना चाहिये। आजकल बड़े टोले बहुत कम रह गए हैं अतः एक ऊँट 50–60 सांड के लिए पर्याप्त रहता है। अगर गाँव में प्रजनन के लिए सामुदायिक ऊँट है तो उसे भी एक प्रजनन काल में 50–60 ऊंटनियों से ही समागम करना चाहिये।

प्रजनन के लिए रखे ऊँट के स्वास्थ्य का विशेष ख्याल रखना चाहिये। तिबरसा, खुजली रोगों से ऊँट के समागम क्षमता में कमी आ जाती है। इसी तरह ऊँटनियों में भी तिबरसा, खुजली तथा बुसोलेसिस से बचाव पचार करना चाहिये वरना गर्भ गिराने की आशंका रहती है। □

पुस्तकालय

ऊँटों के प्रमुख परजीवी रोग और उनके रोकथाम के उपाय

डॉ. संजय कुमार और डॉ. एस. के. घोरुई
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

ऊँटों में परजीवी रोगों के संक्रमण के कारण काम करने की क्षमता, उत्पादन क्षमता और शरीर का विकास प्रभावित होता है जिसके परिणामस्वरूप उष्ट्र पालक को आर्थिक नुकसान झेलना पड़ता है। ऊँट मुख्य रूप से ट्रीपैनोसोमीऐसिस (तिबरसा), सारकोपटीकोसिस खाज–खुजली, चिंचड़ संक्रमण और जठरांत्र कृमिरोग जैसे अंतः और वाह्य परजीवी रोगों से ग्रस्त होता है। ऊँटों में इन हानिकारक रोगों की रोकथाम उचित उपचार और बेहतर प्रबंधन के द्वारा किया जा सकता है।

ऊँटों में ट्रीपैनोसोमीऐसिस (तिबरसा) रोग

ऊटों में ट्रीपैनोसोमीऐसिस (सर्रा, तिबरसा) रोग ट्रीपैनोसोमा इवान्सी नामक प्रोटोजोआ की वजह से होता है। ट्रीपैनोसोमीऐसिस अफ्रीका, अरब और एशिया के ऊँटों में उच्च रुग्णता और मृत्यु दर का प्रमुख कारण है. इस रोग का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव क्रोनिक (पुरानी) ट्रीपैनोसोमीऐसिस से होता है जिसका पहचान गर्भपात, बांझपन, कम दूध उत्पादन, वजन कम होना और काम करने की क्षमता में कमी है। ट्रीपैनोसोमा इवान्सी प्रोटोजोआ काटने वाली मक्खियों के विभिन्न जातियों जैसे टेबनस, स्टोमोक्सीस, लीपेरोसिया, हीमेटोपोटा और हीप्पोबोसका द्वारा यंत्रवत् (मेकेनीकली) फैलता है। इन मक्खियों की गतिविधि गीले मौसम के दौरान बहुत महत्वपूर्ण होती है और यह परजीवी के प्रसार में सहायक होता है। सर्रा रोग का प्रकोप अक्सर बरसात के मौसम के दौरान और बाद में होता है हालांकि इस रोग के छिटपुट मामले पूरे साल भर मिलते रहते हैं।

रोग के प्रारंभ में, संक्रमित ऊँट में बीमारी का कोई उल्लेखनीय लक्षण नहीं दिखता है। हालांकि, परिधीय रक्त में परजीवी की उपस्थिति के कारण बुखार, कमजोरी और दुबलापन स्पष्ट रूप से धीरे – धीरे बढ़ते जाते हैं और जानवर की स्थिति खराब हो जाती है। यह रोग काफी लंबी अवधि (तीन से चार सालों) तक रह सकता है और अंततः पशु की मौत हो जाती है। यह रोग आत्म सीमित चरित्र की होती है जिससे इसका आगे सीमित संक्रमण होता है। पशुओं के आराम देने, अच्छी तरह से खिलाने और अच्छा प्रबंधन से बीमारी में लगभग 20% की कमी हो सकती है लेकिन पशु संक्रमण के वाहक बने रहते हैं। बीमारी के उन्नत चरण में संक्रमित ऊंट के शरीर के निचले भागों में सूजन होता है, बाल गिर जाते हैं, त्वचा के नीचे वसा में कमी और कूबड़ कम होने लगता है। सभी विकसित मांसपेशी अपक्षय से पीड़ित (एट्रोफाइड) हो जाता है। रक्त में पेरासाइटिमिया के वृद्धि के कारण पशुओं में ग्लूकोज की कमी हो जाता है जिससे बेचैनी के लक्षण दिखते हैं जो रेबीज, सांप के काटने या लेप्टोस्पायरोसिस के लक्षण के सदृश होता है और संक्रमण के इस स्थिति में रोग का निदान शायद ही अनुकूल होता है।

परजीवी के प्रतिजनी परिवर्तन (एंटीजेनिक वेरीयेशन) के कारण आज तक ट्रीपैनोसोम्स के किसी भी टीके का विकास नहीं हो पाया है। इस प्रकार, रोग के वाहक स्थिति को परिभाषित करने के लिए नैदानिक उपाय का विकास ही मौजूदा विकल्प है जिससे रोग नियंत्रण की निगरानी में बेहतर रूप से मदद हो सकता है। अस्थिर पेरासाइटिमिया की वजह से मायक्रोकॉपीकल (गीला धब्बा सना हुआ रक्त धब्बा) परीक्षा और जैविक परीक्षा (चूहों में संदिग्ध रक्त के इंजेक्शन) द्वारा 50-80% तक संक्रमण पता लगाने के स्तर मे कमी आती है। इसी तरह एंजाइम से जुड़े सीरो जैव रासायनिक परीक्षण जैसे इलीजा, फ्लोरोसेंट एंटीबॉडी परीक्षण आदि की सीमायें हैं जो ट्रीपैनोसोम्स के संक्रमण और इसकी दवा की सफलता या विफलता के बारे में व्याख्या करता है। पीसीआर द्वारा इस बीमारी की जांच सोने के मानक के रूप में स्थापित किया गया है लेकिन यह जाँच खर्चीला

और काफी समय लेनेवाला है।

ट्रिपैनोसोमियासिस का नियंत्रण अभी भी विवेकपूर्ण कीमोथेरेपी और रसायनरोगनिरोध पर निर्भर करता है क्योंकि आज तक ट्रीपैनोसोम्स के किसी भी टीके का विकास नहीं हो पाया है. हालांकि, कीमोथेरेपी और रसायनरोगनिरोध की वर्तमान रणनीति की भी सीमाएँ हैं जैसे कम दवाओं की उपलब्धता, उपलब्ध ट्रीपैनोसोम्स की दवाओं के खिलाफ प्रतिरोध विकसित होना और दवाओं की विषाक्तता इत्यादि. आमतौर पर निम्नलिखित दवाओं का इस्तेमाल ट्रिपैनोसोमियासिस की रोकथाम के लिए किया जाता है।

क) क्यूनापारामीन डायलमीथाइसलफेट – 3–5 मिलीग्राम किग्रा शरीर भार के अनुसार त्वचा में।

ख) नागानोल (सुरामीन, मोरानील) – 0.4–0. 6 ग्राम 45 किग्रा शरीर भार के अनुसार नसों में।

ग) क्यूनापारामीन डायलमीथाइसलफेट और क्यूनापारामीन क्लोराइड / 5 मिलीग्राम किग्रा शरीर भार के अनुसार त्वचा में।

घ) आइसोमेटामीडियम क्लोराइड हायडरोक्लोरेट – 0.5–1 मिलीग्राम किग्रा शरीर भार के अनुसार नसों में या मांस में इस दवा का उपयोग अधिक प्रभावी दवाओं के अभाव में करनी चाहिए।

रोगनिरोधी के रूप में क्यूनापारामीन डायलमीथाइसलफेट (पानी में घुलनशील) और क्यूनापारामीन क्लोराइड (पानी में अघुलनशील) का 16.7% जलीय घोल को मानसून के बाद की अवधि (सितंबर–अक्टूबर के महीने) में इस्तेमाल किया जाना चाहिए।

ऊंट में खाज–खुजली की बीमारी

खाज–खुजली ऊंटों की सबसे हानिकारक त्वचा रोग है जो बाह्य–परजीवी सारकोपटिस स्काबिएई माइट के संक्रमण द्वारा होता है। माइट का संक्रमण सबसे आम तौर पर सर्दियों के अंत में या वसंत के शुरुआत में या वर्ष भर भी रोग का प्रकोप हो सकता है। यह निर्बल और कुपोषित ऊंटों में अत्यधिक भीड़भाड़ में रखने के कारण फैलता है।

सर्वेक्षण के आंकड़ों के मुताबिक, खाज–खुजली की बीमारी 1 या 2 ऊंटों को अलग रखने की तुलना में प्रवासी ऊंटों के झुंड में ज्यादा (लगभग 50 प्रतिशत) पाया जाता है। यह सभी आयु समूह के जानवरों को प्रभावित करता है। ठंडे तापमान और उच्च सापेक्ष आर्द्रता सारकोपटिस मेंज के संक्रमण को बढ़ावा देता है और और इसके उत्तरजीविता को बनाए रखता है।

आम तौर पर मेंज का संक्रमण शरीर के कम बालों वाले भागों जैसे चेहरा, गर्दन, कांख और किनारों पर अधिक होता है। हालांकि, उच्च संक्रमण होने और ऊंटों की अच्छी देख–रेख नहीं होने पर माइट सारे शरीर में फैल जाता है। सारकोपटिस स्काबिएई माइट द्वारा त्वचा में छोटा छिद्र बनाने और खानेवाली गतिविधि के कारण गहन खुजली, सूजन, प्रभावित हिस्सों से बालों का नुकसान और सूखे पीब की पपड़ी बन जाती है। तीव्र खुजली के कारण खरोंच हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप प्रभावित त्वचा सतहों पर स्त्राव और हेमोरेज भी होता है।

ऊंट के शरीर के प्रभावित विभिन्न भागों से त्वचा का खुरचन को 10% पोटेशियम हाईडरोक्साइड में उबाले जाने पर माइट्स, उनके अंडे और मल सूक्ष्म (मायक्रोकॉपीकल) परीक्षा के तहत दिखाई दे सकता है। यह बीमारी मुख्यतः जानवरों के खराब प्रबंधन के कारण फैलता है इसलिए झुंड में संक्रमित ऊंट को स्वस्थ पशुओं से तुरंत अलग किया जाना चाहिए और ऊंटों को रगड़ करने वाले स्थानों (दीवारों, पेड़, आदि) पर नहीं छोड़ना चाहिए। स्वस्थ और पीड़ित जानवरों के मिश्रण को रोकने के लिए जानवरों के चरने और घुमने वाले क्षेत्रों को तुरंत बदला जाना चाहिए। जैसा कि माइट्स शरीर पर काफी सतही रूप में रहता है, इसका नियंत्रण नियमित रूप से पशुओं के साफ–सफाई द्वारा किया जा सकता है। पशु के आवास क्षेत्रों को चूने और नमक से नियमित कीटाणुशोधन और कीटनाशक औषधि का कम से कम वर्ष में एक बार छिड़काव संक्रमण की संभावना को कम कर देता है। ठीक हो गये जानवरों में फिर से संक्रमण रोकने के लिए एक ही समय में सभी ऊंटों का इलाज करना चाहिए। ऊंटों की देखभाल करनेवाले व्यक्तियों को हमेशा अच्छी तरह से साबुन और अन्य कीटाणुनाशक से अपने हाथों को धोना चाहिए।

कीटनाशक औषधि जैसे डियाजीनोन, अमितराज, डेल्टामेथ्रिन और फेनवालीरेट का इस्तेमाल कर इस रोग का इलाज किया जा सकता है। ऊँटों में माइट्स के इलाज में एवरमेक्टिन नामक औषधि के इस्तेमाल से उत्कृष्ट परिणाम मिलता है।

ऊंटों में चींचड़ संक्रमण

चींचड़ का संक्रमण ऊंटों की त्वचा पर होता है। चींचड़ का भारी संक्रमण से ऊंटों में काम करने की क्षमता में कमी, दूध के उत्पादन में कमी और युवा पशुओं में विकास दर प्रभावित होता है। आमतौर पर भारत में ऊंटों पर पाया जाने वाला चिंचड़ हायलोमा ड्रोमेडेरी, हायलोमा अनाटोलीकम, हायलोमा मारजीनेटम इसाकी, रीपीसेफेलस और ओरनिथोडोरस हैं। चींचड़ ऊँट से खून की बड़ी मात्रा चूस लेता है जिससे आम तौर पर त्वचा में लगातार जलन पैदा होता है जिसके परिणामस्वरूप जानवर शरीर को रगड़ने के लिए मजबूर हो जाता है। चींचड़ जब जानवर के आँखों या पलकों के आसपास होता है तब वे अपने आँखों को पेड़ या अन्य वस्तुओं पर रगड़ने के लिए मजबूर हो जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप अक्सर कंजक्टिवाइटिस हो जाती है। कीटनाशक औषधि जैसे डियाजीनोन, अमितराज, डेल्टामेथ्रिन और फेनवालीरेट का छिड़काव चिंचड़ के रोकथाम में प्रभावी होता है।

ऊंटों के नाक में बोट्स मीयासीस

यह बीमारी ऊँटों के नाक में सेफेलोपीना टीटीलेटर नामक मक्खी के संक्रमण के कारण है। आम तौर ऊंटों पर मक्खी के मैगोट से गंभीर प्रभाव नहीं होता है लेकिन वयस्क मक्खियों की गतिविधि और उनके नाक में अंडे देने से जानवरों में चिड़चिड़ापन होता है। जानवरों में बेचौनी, लगातार छींकना और खर्राटा लेना बीमारी के अन्य लक्षण हैं। इस बीमारी में जानवरों के नाक की गुहा में और बलगम में मक्खी के लार्वा उलझे रहते हैं जिससे नाक की गुहा में जलन होता है और बैक्टीरियल संक्रमण की संभावना भी अधिक हो जाती है. त्वचा में एवरमेक्टिन के इस्तेमाल से इस बीमारी को प्रभावी ढंग से नियंत्रित किया जा सकता है।

ऊंटों में कृमिरोग

गैस्ट्रोइंटेस्टाइनल कृमिरोग ऊंटों के महत्वपूर्ण परजीवी रोगों में से एक है जो गोलकृमि की बहुत सारी प्रजातियों से होता है। छोटे पशुओं के विपरीत ऊंट में गोलकृमि का संक्रमण सामान्यतः लक्षणहीन होता है तथा सामान्य सुस्ती के लक्षण, छिटपुट दस्त, कब्ज, दुर्बलता, और एनीमिया होता है. पोषक तत्वों के अवशोषण में बाधा होने से वजन के बढ़ने में कमी, ऊर्जा और काम करने की क्षमता में गिरावट आती है। जुलाई से अक्टूबर महीने की अवधि पेट का कीड़ा के संक्रमण के लिए उपयुक्त पाया गया है। मानसून के बाद की अवधि विशेष रूप से अगस्त से सितंबर के महीने में, अधिकतम संक्रमण पाया जाता है। गोलकृमि संक्रमण के विभिन्न प्रकार में ज्यादातर स्ट्रोगाइल्स जैसे कि हिमोंकस, नेमाटोडायरस नेमाटोडीरेला होते हैं। इसके अलावा स्ट्रोगायलोंईडिस, टरायचुरिस आदि का संक्रमण भी देखा गया है। हाल ही में ऊंट में फाइलेरिया कृमि, डिपेटेलोनीमा इवान्सी जो धमनियों में पाया जाता है। महत्वपूर्ण रोग के रूप में ध्यान आकर्षित किया है। विभिन्न जानवरों की प्रजातियों में पेट के कीड़े का संक्रमण मुख्य रूप से भू – कृषि जलवायु परिस्थितियों पर निर्भर करते हैं। बरसात और इसके बाद के मौसम परजीवी के उपजाऊपन और चारागाह के दूषण का स्तर बनाए रखने के लिए उपयुक्त पाया गया है। इस गर्म शुष्क क्षेत्र में, ऊंट के पेट में कृमिरोग के संक्रमण बहुत महत्वपूर्ण है। भेड़ और बकरी के साथ ऊंट की मौजूदगी जानवरों में कीड़ा संक्रमण के व्यापक प्रसार में सहायक है।

यह स्पष्ट है कि पेट का कीड़ा परजीवियों और इसका संक्रमण स्थान और प्रबंधन प्रणाली के साथ बदलती है। यह कहने के लिए पर्याप्त है कि ऊंटों का अच्छा प्रबंधन ऊंटों को नियमित रूप से कीटाणुमुक्त रखकर किया जा सकता है। यह पाया गया है कि पेट का कीड़ा के लगातार संक्रमण से एनीमिया के रूप में स्वास्थ्य की खराब स्थिति, थकान और शरीर का विकास रुक जाता है। नियमित कीटाणुनाशक दवाओं के इस्तेमाल से ऊंटों में कृमिरोग को नियन्त्रण किया जा सकता है।

□

अधिक उत्पादन के लिए भेड़ प्रबन्धन

डॉ. राजेश कुमार सावल
केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान का क्षेत्रीय केन्द्र, बीकानेर

पश्चिमी राजस्थान का काफी बड़ा भू–भाग मरू स्थल के अन्तर्गत आता है जहाँ वर्षाधारित खेती के कारणों से इस क्षेत्र में जीविका का मुख्य साधन पशु पालन है। पशुधन उत्पादन मुख्य रूप से पशुओं की नस्ल, खान पान व रख रखाव पर निर्भर करता है। भेड़ें मुख्य रूप से ऊन और मांस के लिये पाली जाती है। यद्यपि इनसे दूध और खाद भी उपलब्ध होते हैं। अच्छी ऊन से गाँव में ऊन का काम करने वालों के रहन–सहन की स्थिति में सुधार होता है तथा उन्हें वर्ष भर रोजगार प्राप्त होता है।

आवास व्यवस्था

भेड़ बकरियों के लिए अधिक कीमती आवास की आवश्यकता नहीं होती, उनके रहने के लिए साधारण, सूखा पानी पूला/खींप से बना छप्पर व पाले की ढेरी से बने बाड़े पर्याप्त होते है जिससे भेड़ों के आवास पर अधिक खर्चा नहीं होता। भेड़ पालन के लिए रेवड़ को सर्दी/गर्मी/वर्षा से बचाने हेतु मौसम के अनुसार आवास व्यवस्था करना जरूरी है। शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में बाड़ा जमीन से ऊंची व खुली जगह पर बनाना चाहिए जिससे हवा का उचित प्रबन्ध हो सके तथा वर्षा का पानी एकत्र न हो।

खुले बाड़े की व्यवस्था उन जगहों पर अधिकतम होती है जहां जलवायु शुष्क होती है। दिन के समय भेड़ों की चराई कराई जाती है व रात्रि के समय भेड़ों को बाड़ों में बैठाया जाता है ये बाड़े आकार में बड़े व कंटीले तारों या झाड़ियों से घिरे रहते है। इस प्रकार के बाड़ों में भेड़ों को आंधी वर्षा व ठंड से नहीं बचाया जा सकता है यह व्यवस्था उतम नहीं है।

खुले बाड़े की व्यवस्था भेड़ों के आवास की एक आदर्श व्यवस्था है अधिकतर भेड़ पालक जो अर्द्ध शुष्क व मैदानी भागों से संबंध रखते हैं अपने रेवड़ के लिए इसे प्रयोग में लाते हैं। इस व्यवस्था में छते हुए स्थान के साथ करीब दोगुने अनुपात में खुला स्थान होता है। इससे पशु स्वेच्छानुसार घुमकर बाहर व भीतर आराम से रह सकते हैं। बाड़ा इतना बड़ा होना चाहिए की प्रत्येक पशु को पर्याप्त (9 वर्ग फुट) स्थान मिल सके। बाड़े का आधा भाग घास फूस का छप्पर या एस्बेस्टोस की चद्दर से ढका होना चाहिए। जिससे भेड़ों को सर्दी व वर्षा के समय अन्दर बैठाया जा सके। बाड़ों की खाली खुली जगह को तार/जाली से घेरा हुआ होना चाहिए जिससे जंगली जानवर नुकसान न पहुंचाये। बाडों के चारों ओर छायादार पेड़ होने चाहिए जिससे कि गर्मी के दिनों मे बाड़ों के अन्दर का वातावरण अनुकूल रहे तथा भेड़ों को खिलाने के लिए भी काम में लिया जा सके।

पानी की खेली प्रत्येक बाडे में या पास होनी आवश्यक है जिससे भेड़ों पर्याप्त मात्रा में पानी पिलाया जा सके। समय–समय पर खेलियों को साफ करते रहना चाहिए तथा उसमें लाल दवा का उपयोग करना चाहिए। खेलियों को साफ करने के बाद माह में एक बार चूना भी डालना चाहिए इससे पानी साफ रहता है तथा भेड़ व बकरियों को कैल्शियम भी मिलता रहता है। चारा अभाव के दिनों में दाने चारे की आवश्यकता होती है। इसके लिए लोहा/लकड़ी/मिट्टी से बने पात्र प्रयोग में लिये जाते है। इस पात्र को इतनी ऊंचाई पर रखना चाहिए जिससे जानवर आसानी से दाना चारा तक पहुंच सके व इसकी बनावट भी इस तरह की होनी चाहिए जिससे की पशु अन्दर खड़ा न हो सके तथा उसमें मल मूत्र न कर सके। एक वयस्क भेड़ को खाने के लिए 40–45 सेमी व बच्चे के लिए 30–35 सेमी स्थान की आवश्यकता होती है। भंडार गृह होना भी आवश्यक है जिसमें चारा, दाना व अन्य वस्तुएँ रखी जा सके। औषधियो को रखने के लिए इसमें अलग से अलमारियों हेतु साफ स्वच्छ स्थान होना चाहिए। उसमें कैंची, चाकू, नाल, रूई, पट्टी, लाल दवा, टिंचर आयोडिन,

डीटोल आदि अति आवश्यक सामग्रियां होना चाहिए। बीमार/कमजोर पशुओं के लिए बड़े बाड़े में अलग से छोटा बाड़ा/शेड बनाना चाहिए जिससे उनको दूसरे पशुओं से अलग रखा जा सके तथा उनकी उचित देख भाल की जा सके। प्रत्येक पशु को अलग–अलग कक्ष में रखना चाहिए इसके लिए बड़े बाडों को लकड़ी के पटरों या तार की जाली द्वारा छोटे–छोटे 3 वर्ग मीटर के भागों में बांट दिया जाता है। प्रत्येक आवास में ब्याने वाली भेड के लिए अलग से कक्ष होने चाहिए। कक्ष का आकार इतना बडा हो ताकि उसमें भेड व उसके बच्चे को पर्याप्त स्थान मिल सके। प्रत्येक कक्ष में पानी व दाने की व्यवस्था होनी चाहिए। कक्ष को वायु के झोकों से मुक्त रखना चाहिए ताकि सर्दियो/गर्मीयों में बच्चे व भेड़ को बचाया जा सके। इनमें सूखी एवं स्वच्छ बिछावन का प्रयोग करना चाहिए व आवश्यकतानुसार बिछावन को बदलते रहना चाहिए। मेंमनों के रखने का स्थान साफ, सूखा एवं हवादार होना चाहिए। बाड़े के फर्श को बीमारी के कीटाणुओं से मुक्त रखने के लिए ब्यांत के 15 दिन पूर्व फर्श की खुदाई करके, मिट्टी बदल कर उसमें चूना/कीटाणु नाशक पाउडर मिला देना चाहिए। सर्द व गर्म हवाओं से बचाने के लिए उचित प्रबन्ध होना चाहिए तथा सूखी घास–फूस की बिछावन का प्रयोग करना चाहिए इससे बच्चों को आराम मिलता है तथा बच्चे मिट्टी नहीं खा पाते है। बाड़े के आस–पास भेड़ों को नहलाने के लिए जल कुंड का होना भी आवश्यक है जिससे वर्ष मे कम से कम दो बार भेड़ों को दवा के पानी से नहलाया जा सके तथा पशुओं को बाह्य परजीवियों से छुटकारा दिलाया जा सके। बाड़े के प्रवेश द्वार पर पांच फुट चौड़ा, चार फुट लम्बा व छः इंच गहरा पक्का खुर स्नान का स्थान भी होना चाहिए जिसको वर्षा से पूर्व के दिनों में दवा (नीला थोथा) के पानी से भर कर पशुओं को उससे अन्दर व बाहर भेजना चाहिए इससे खुर पकने की शिकायत दूर होगी। भेड़ पालक अपनी आर्थिक दृष्टिनुसार अपने रेवड़ के आकार के अनुसार उपरोक्त आवास व्यवस्था में परिर्वतन कर उचित आवास का प्रबन्ध करें तो उसे निश्चित ही लाभ प्राप्त होगा।

प्रजनन की उचित व्यवस्था भेड़ पालन में महत्वपूर्ण है। उपयुक्त समय पर प्रजनन न होने से उत्पादन क्षमता मे कमी आती है और साथ ही पशु की उत्पादकता उम्र में भी कमी आती है। उसके कारण भेड़ पालक को फायदे की बजाय आर्थिक हानी उठानी पड़ती है। उचित पालन–पोषण होने पर भेड़ वयस्क होने की औसत आयु से पहले भी वयस्क हो जाती है। भेड़ों को सही उम्र व शारीरिक भार प्राप्त करने के बाद ही गर्भित कराना चाहिए जिससे कि मादा भेड़ स्वस्थ मेंमने को जन्म दे सके और अगर जन्म के समय मेंमना स्वस्थ एवं सही वजन का होगा तो वह बड़ा होकर बहुत ही अच्छा मेढा या भेड़ बन जाएगा। जन्म के समय चराई के लिए पर्याप्त मात्रा में चारा उपलब्ध हो व मौसम अनुकूल होना चाहिए। उपयुक्त वातावरण एवं प्रबन्ध में पैदा होने वाले मेमनों का जन्म भार अधिक होगा और उनमें मृत्यु दर भी कम होगी। उचित प्रजनन व्यवस्था के लिए हमें नस्ल, मेढ़ों का चयन, नर व मादा का अनुपात, गर्भाधान का समय उम्र इत्यादि का ध्यान रखना चाहिए।

उत्तम नस्ल का चयन

सर्वप्रथम भेड़ पालक को उन्नत व अच्छी नस्ल के पशुओं को ही अपने रेवड़ में रखना चाहिए। नस्ल का चयन करते समय नस्ल की उपयोगिता (ऊन व मांस), स्थानीय जलवायु एवं चारे की उपलब्धता का ध्यान रखना चाहिए। जब भी कोई नया रेवड़ स्थापित करना चाहता हो तो उसे नर व मादा किसी प्रतिष्ठित सरकारी या निजी फार्म से ही खरीदने चाहिए। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि भेड़ अपने नस्ल के गुणों के अनुरूप हो तथा उस रेवड़ में पहले से किसी सक्रांमक बीमारी न हुई हों। अपने रेवड़ का आकार सुनिश्चित करते समय भेंड़ पालक को उपलब्ध तकनीकी ज्ञान, व्यक्तिगत श्रम एवं आर्थिक संसधानों के आधार को ध्यान रखना चाहिए। हर वर्ष रेवड़ में कम से कम 20 प्रतिशत युवा पशुओं को सम्मिलित करना चाहिए तथा बूढे एवं नकारा पशुओं को रेवड़ से निकालते रहना चाहिए। प्रजनन हेतु उत्तम नर व मादा का हर वर्ष चुनाव करना चाहिए। चयन करते समय पशु के रंगरूप, बाहरी आकार, वजन, नस्ल की शुद्धता पर विशेष ध्यान

देना चाहिए। इसके साथ साथ उत्पाद की गुणवता का भी ध्यान रखना चाहिए। रेवड़ की उत्पादन क्षमता को बढ़ाने के लिए बेकार, बीमार, निम्न उत्पादन एंव बूढ़े पशुओं को रेवड से प्रतिवर्ष निकाल देना चाहिए और उनके स्थान पर रेवड़ में पैदा हुए नये पशुओ को शामिल करना चाहिए।

मेढ़ों का चयन

प्रत्येक सन्तान के आधे आनुवांशिकीय गुण/जीन्स, मां से तथा आधे पिता से आते हैं। परन्तु किसी रेवड़ की आनुवांशिक प्रगति मुख्य रूप से मेढे पर निर्भर करती है क्योंकि एक मेढे से रेवड़ में कई संताने होती है। इसलिए मेढे को रेवड़ का आधा भाग भी माना जाता है। प्रजनक मेढा शारीरिक रूप से हष्ट–पुष्ट एवं उच्च भार वाला, पूर्ण स्वस्थ एवं मजबूत और प्रजनन क्षमता में उच्च कोटि का होना चाहिए। इसके साथ साथ मेढा किसी रोग से ग्रस्त नही होना चाहिए। मेढों को दो वर्ष उपयोग के बाद रेवड़ से निकाल देना चाहिए ऐसा करने से रेवड़ में अतः प्रजनन का खतरा नहीं रहता है। प्रजनन शुरू होने से पहले खुरों की उचित देखभाल करनी चाहिए। बूढे खुरों को काट देना चाहिए अन्यथा पशुओं में लंगड़ापन आ सकता हे। मेढों को प्रजनन कराने के 2–4 सप्ताह पूर्व से ही 250 ग्राम दाना प्रतिदिन देना चाहिए एवं इसके साथ पौष्टिक चारा भी देना चाहिए। इसके अतिरिक्त यदि संभव हो तो मेढों का वीर्य परीक्षण कराना चाहिए जिससे प्रयोग किए जाने वाले मेढों से अधिक से अधिक भेड़े गर्भित कर मेमने प्राप्त कर सके।

मदकाल व मदचक्र

भेड़ों के ताव में आने के समय को मदकाल कहते हे। भेड़ों में मदकाल की अवधि लगभग 12–72 घंटे रहती है और भेड़ों में मदचक्र 16–18 दिन होता है। यदि भेड़ पहले मदकाल में गर्भ धारण नहीं करती तो वह दुबारा 16–18 दिन बाद मद में आती है। मिलान करने के पश्चात् भेड़ों को चिन्हित कर देना चाहिए। यदि मिलान की गई चिन्हित भेड़ ताव में नही आती है तो ये समझना चाहिए की भेड़ गर्भवती हो गई है। यदि भेड़ पुनः ताव में आती है तो उसका पुनः मिलान करा देना चाहिए। प्रजनन काल की अंवधि ढाई से तीन माह से अधिक नही रखनी चाहिए ताकि मेमने एक ही काल में पैदा हो एवं उनकी देखभाल एक ही तरह से हो सके एंव आसानी से हो सके।

नर मादा का अनुपात

एक प्रजनक मेढे से एक वर्ष में 25–30 भेडों का प्रजनन आसानी से कराया जा सकता हे। एक सौ भेडों के रेवड़ में 3 प्रजनक मेढे पर्याप्त होते हैं। भेडो में नसबन्दी किये गये मेढों को छोडकर ताव में आयी भेडों को पता लगाकर उनका मिलान उन्नत मेढों से करा देना चाहिए। सारा साल प्रजनन मेढों को रेवड में नही छोडना चाहिए या प्रजनन काल के अतिरिक्ति उनकी जननेद्रियों को कपडे से बांध देना चाहिए। इससे मेढों में भेड़ के प्रति विशेष रूचि बनी रहती है। कपडा बांधते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए की मेढें की जननेद्रियों को कोई चोट या हानि नहीं पहुंचे।

रेवड़ में प्रजनन व्यवस्था

किसी भी रेवड़ को लाभदायक बनाने के लिए यह अति आवश्यक है कि रेवड़ में भेड़ लगातार स्वस्थ्य, अधिक भार के मेमने पैदा करती रहे और इनके लिए रेवड़ में उचित प्रजनन व्यवस्था होनी चाहिए। अगर भेडों में उपयुक्त समय पर प्रजनन नहीं होगा तो उसकी उत्पादन क्षमता में कमी आती है तथा पशु की उत्पादकता उम्र भी कम हो जाती है। इन सब के कारण भेड़ पालक को आर्थिक हानि होती है। प्रतिवर्ष प्रजनन के लिए उत्तम नर व मादा का चयन करना चाहिए। जिससे रेवड़ का उत्पादन बढ़ाया जा सके। प्रजनन काल में प्रत्येक मेढे को 200–250 ग्राम दाना चराई के अतिरिक्त देना चाहिए।

नकारा जानवरों की छंटनी

पशु पालन व्यवसाय को लाभकारी बनाने के लिए उत्तम जानवरों से अधिकाधिक प्रजनन के साथ साथ अलाभकारी/अल्प लाभकारी जानवरों की शीघ्रातिशीघ्र छंटनी अति आवश्यक है। ऐसे जानवर शुद्ध लाभ को प्रभावित करते हैं। अतः उन्हें अपने फार्म से निकाल देना चाहिए। ऐसे जानवरों की पहचान समय रहते कर लेनी चाहिए। नाकारा जानवरों को छंटनी से

पूर्व ऐसे जानवरों की पहचान करना आवश्यक है। जन्म के समय की विकृतियाँ ऐसे जानवर जो जन्म के समय ही कुरूप हो किसी अंग का विकास पूर्ण नहीं हो या कोई अंग नहीं हो, या फिर सामान्यतः अक्षम नजर आते है उन्हें जन्म के एक सप्ताह बाद या फिर 2–3 माह बाद (जब तक माँ को दूध देने में या थन वहवाना में बीमारी होने का भय न रहे) निकाल देना चाहिए। जन्म से परिपक्व आयु तक उन जानवरों को जिनकी वृद्धि दर कम रहे व बौने तथा शारीरिक भार काफी कम हो उन्हें भी या तो मांस के लिए छंटनी कर बेच देना चाहिए । यदि उचित ग्राहक न हो तो उन्हें गोशाला या अन्य पशु कल्याण संस्थाओं को दे देना चाहिए। अन्यथा उनके पालन पोषण पर होने वाले व्यय से स्वस्थ जानवरों के प्रबन्धन व पोषण पर प्रभाव पड़ेगा। परिपक्व आयु पर यदि जानवर प्रजनन के लिए असामान्य हो जैसे मद में न आना, बार बार मदावस्था के लक्षण होना तथा उपचार के बाद भी प्रजनन योग्य नहीं तो उन्हें नाकारा वर्ग में मानकर उचित समय पर छंटनी कर देना चाहिए। स्वास्थ्य आधार पर छंटनी ऐसे जानवर जो प्रायः बीमार होते हो या लम्बे समय तक अस्वस्थ्य हो तो ऐसे रोगों से पीड़ित हो जो असाध्य हो या उनके इलाज पर अत्यधिक खर्च करना पड़े, उन्हें भी नाकारा समझकर छंटनी कर देना चाहिए। इस वर्ग में लंगड़े, दूध न आना या थनैसा से विकृत होना, बांझपन, टीबी, जोहनीज रोग का होना, ब्रेसिलोसिस तथा अन्य ऐसे रोग जो मनुष्य को संक्रामित कर सकते हो आदि वाले जानवर शामिल होते हैं। अल्प उत्पादन के आधार पर छंटनी एक व्यवसाय को लाभकारी बनाने के लिए आवश्यक है। ऐसे जानवर जो कम शारीरिक वृद्धि, कम दूध उत्पादन करते है, अधिक लम्बे समय बाद परिपक्व होते हैं या फिर ब्यात–अन्तर बहुत अधिक हो, वे भी नकारा वर्ग में शामिल किये जा सकते हैं और उन्हें शीघ्र–अतिशीघ्र छंटनी कर निकाल देना चहिए। वृद्धावस्था के आधार पर भी छंटनी करना आवश्यक है। जब जानवर बूढ़ा हो जाता है तो उसकी प्रजनन क्षमता/उत्पादन क्षमता तथा आहार को पचाने की क्षमता कम हो जाती है और उसके बीमार पड़ने की संभावना भी बढ़ जाती है। साथ ही वृद्ध जानवरों के अधिक होने से युवा जानवरों को स्थान पाने, पोषण व अन्य सुविधाओं के अभाव का सामना करना पड़ता है अतः बूढे जानवरों को युवा जानवरों से बदलते रहना चाहिए समय–समय पर बूढ़े जानवरों को मांस हेतु बेच देना चाहिए। नस्ल सुधार हेतु जो जानवर विशुद्ध नस्ल के पहचान चिन्हों पर खरे नहीं उतरते हों उन्हे भी नकारा घोषित कर छंटनी कर देना चाहिए ।

ग्याभिन भेड़ एवं मेमने की देखभाल

नर व मादा के मिलान के बाद एक महीने में भेड़ के वजन में वृद्धि होनी शुरू हो जाती है, शरीर गठीला दिखने लगता है व पेट का आकार बढना शुरू हो जाता है। ऐसी भेडों को रेवड़ सें छांटकर, अलग रेवड़ बनाकर रखना चाहिए और उनकी विशेष देखभाल करना जरूरी है क्योंकि ग्याभिन काल के दौरान मादा का शरीर पोषण व गर्भगत मेमने के विकास के लिए विशेष पोषण आहार की जरूरत होती है अन्यथा अन्य घटकों की कमी से कई समस्याएँ आ सकती है जैसे कि गर्भपात होना, मादा व गर्भगत मेंमनों का विकास न होना व प्रसव के बाद भेड़ में दूध न होना एवं मृत्यु दर का बढ़ना। इन सब समस्याओं से बचने के लिए गर्भावस्था में भेडों को उनकी दैनिक आवश्यकता से अधिक चारा दाना देना चाहिए जिससे स्वस्थ संतान पैदा हो सके एवं रेवड़ में बच्चे की मृत्यु दर भी कम हो सके। गर्भावस्था में भेड़ों का अच्छी तरह से ध्यान रखने से बच्चे तो स्वस्थ होंगे ही साथ ही साथ भेड़ की उत्पादन क्षमता भी बढ जाएगी। इस समय भेड़ के गर्भ की वृद्धि तेजी से होती है जिसके लिए उसे अतिरिक्त पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। गर्भाकाल के अन्तिम माह मे भेडों को 250–300 ग्राम दाना मिश्रण प्रतिदिन उपलब्ध करवाना चाहिए। इससे गर्भाशय में बच्चे की अच्छी बढ़ोतरी होती है और भेड़ स्वस्थ बनी रहती है। फलस्वरूप नवजात बच्चों की अच्छी वृद्धि होती है। ग्याभिन भेड़ों को प्रसव से पहले टिटेनस का टीका लगाना बहुत जरूरी है इससे नवजात मेंमनों में व मादा में प्रसव के बाद टिटेनस नहीं होता है। ब्याने के 2–3 दिन पूर्व भेड़ को बाड़े पर ही रखकर उसके आहार की उचित देखरेख

करनी चाहिए। भेड़ एंव बकरी को ब्याने के 5–7 दिनों तक बाड़े पर ही बच्चे के साथ रखना चाहिए इस समय दाने की मात्रा कम देनी चाहिए परन्तु अच्छे किस्म का हरा चारा भर पेट प्रदान करना चाहिए। धीरे–धीरे आहार में दाने की मात्रा बढ़ाई जानी चाहिए ताकि भेड़ को पूर्ण आहार प्राप्त होने लगे तथा अपने शरीर की क्षतिपूर्ति शीघ्रातिशीघ्र हो सके।

भेड़ ब्याने के बाद, बच्चे को स्वच्छ और सूखे कपडें से साफ कर भेड़ के सामने चाटने के लिए छोड़ देना चाहिए। इससे बच्चे के शरीर में फुर्ती भी आती है। मेमनों की नाभि को शरीर से 3–4 से.मी. नीचे से काटकर टिंचर आयोडिन लगा देना चाहिए। मेमने को पैदा हाने के आधा घण्टे के अन्दर मां का प्रथम दूध अवश्य पिलाना चाहिए क्योकि खीस पीने से बच्चे में रोग निरोधक क्षमता बढ़ती है। नवजात मेमनों को पेराफीन लगभग 5 मिली पिलाना चाहिए। इससे उनका पेट साफ हो जाता है। इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि जिस जगह बच्चों का रखना है, वह जगह सूखी एवं बीमारी के कीटाणुओं से मुक्त होनी चाहिए और उनके बाड़े में लगभग 15 दिन पूर्व फर्श की गुड़ाई करके चूना मिला देना चाहिए। पहले चार–पांच दिनों तक मां व बच्चे को एक साथ बाड़े में ही रखना चाहिए । उसके बाद भेड़ों को दिन में चरने हेतु भेज देना चाहिए। करीब 10–15 दिनो के बाद जब भेड़ अपने बच्चों को पहचानने लगे उस समय उन्हे समूह में उनके बच्चा के साथ रख सकते हैं। एक माह की आयु तक बच्चे को 3–4 बार तथा बाद में 2–3 बार दूध पिलाना चाहिए। बच्चे के 80–90 दिन तक दूध पिलाना बहुत ही लाभकारी होता है। इससे पहले दूध छुड़ा देने पर उनकी वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

बच्चे लगभग 15–20 दिन की आयु पर थोड़ा–थोड़ा चारा/दाना खाना प्रारम्भ कर देते हैं। शुरू में बच्चों को बाड़े के आस पास ही चराना चाहिए तथा दाने व पीने के पानी की उचित व्यवस्था करनी चाहिए। मेमनो को चराई के अलावा क्रीप मिश्रण भी देना चाहिए तथा मेमनों की शीघ्र बढोतरी एवं अच्छा वजन प्राप्त करने के लिए शरीर भार के अनुसार 250–300 ग्राम दाना रोजाना देना चाहिए। आरम्भ में तो बहुत कम खाते है परन्तु 30 दिन की आयु तक औसतन प्रति बच्चा 100–150 ग्राम दाना प्रतिदिन खा जाता है। बच्चों को दाना गोलियों (पैलेट्स) के रूप में देना चाहिए। इससे उनको घसका नहीं लगेगा। कई बार बच्चों को पिसा हुआ दाना खिलाने से उनके फेफड़ों में परेशानी आ जाती है, बच्चों के लिए पैलेट्स रूचिकर होती है। प्रायः यह देखा गया है कि बच्चे पिसे हुए दाने के बजाय पैलेट अधिक चाव से खाते हैं, जिससे उनकी वृद्धि सुचारू रूप से होती है। बच्चों की उनकी उपयोगिता के आधार पर आहार देना चाहिए। सामान्य तौर पर भेड़ के 3–6 माह की आयु तक 300–350 ग्राम दाना मिश्रण अन्य चारों के साथ मिलाकर खिलाने से उनकी वृद्धि अच्छी होती है।

नवजात मेमनों की देखभाल

जन्म के बाद जिस जगह बच्चों को रखना है वह जगह साफ, सूखी एवं बीमारी के कीटाणुओं से मुक्त होनी चाहिए। बाड़े के फर्श को लगभग 15 दिन पूर्व गुड़ाई करके चूना मिला देना चाहिए। पहले 4–5 दिनों तक मां व बच्चों को एक साथ बाड़ें में ही रखना चाहिए, उसके बाद भेड़ों को दिन में चरने भेज देना चाहिए। दस दिन के पश्चात् जब भेड़ अपने बच्चों को पहचानने लगे उस समय उन्हें रेवड़ में उनके बच्चों के साथ रख सकते हैं। एक माह की आयु तक भेड़ के बच्चों को दिन में 3–4 बार तथा बाद में 2–3 बार दूध पिलाना चाहिए। बच्चे को 80–90 दिन की आयु तक दूध पिलाना लाभकारी होता है इससे पहले दूध छुड़ा देने पर उनकी वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त दूध धीरे–धीरे छुड़ाना चाहिए, एकदम से दूध छुड़ाने से उनकी वृद्धि पर प्रभाव पड़ता है। बच्चे लगभग 15–20 दिन की आयु पर थोड़ा–थोड़ा चारा दाना खाना आरम्भ कर देते हैं। शुरू में बच्चों को बाड़े के आसपास ही चराना चाहिए तथा उनके दाने व पीने के पानी की उचित व्यवस्था करनी चाहिए। चराई के साथ–साथ बच्चों को दाना व चाटा भी देना चाहिए। शुरू में बच्चे बहुत कम खाते हैं परन्तु 90 दिन की आयु तक औसतन 100–150 ग्राम दाना प्रति बच्चा प्रति दिन खा जाता है। सामान्य तौर पर 3–6 माह की आयु तक के बच्चों को

250–300 ग्राम व 6–12 माह की आयु तक 300–350 ग्राम दाना मिश्रण अन्य चारों के साथ मिलाकर खिलाने से उनकी वृद्धि अच्छी होती है। बच्चों को शुरू के दिनों में अधिक दूध पीने तथा मिट्टी खाने के कारण दस्त लग जाते हैं जिससे उनकी वृद्धि कम हो जाती है। अतः बच्चे को दूध उनकी शारीरिक आवश्यकतानुसार पिलाना चाहिए तथा उन्हें मिट्टी खाने से रोकने के उपाय करने चाहिए। इस अवधि में बच्चों को "सलमैट" 5 दिन तक देना लाभदायक होता है, 20–30 मिली प्रति 20 किलो शरीर भार के आधार पर प्रथम खुराक तथा दूसरी खुराक से दवा की मात्रा आधी कर देनी चाहिए। भेड़ के बच्चों में पाये जाने वाले अन्तः व बाह्य परजीवियों को समाप्त करने के लिए डिवर्मिंग के लिए नीलवर्म 0.5 मिली प्रतिकिग्रा या अन्य दवाई शरीर भार की दर से पिलाते हैं। दवा के पानी से वर्ष में दो–तीन बार नहलाने से जुएं, किलनी व चिचड़े आदि से बचाया जा सकता है। भेड़ के बच्चे को तीन माह की आयु पर इन्टरोटोक्सेमिया के टीके लगवाना आवश्यक है। यदि भेड़ पालक अपने रेवड़ में बच्चों की उपरोक्त ढंग से देखभाल करता है तो बच्चों की मृत्यु दर को कम किया जा सकता है तथा उत्पादन स्तर बढाकर अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

व्यवसायिक मांस उत्पादन

भेड़ पालक को अधिक आमदनी ऊन के बनिस्पत मांस से होती है। भेड़ पालक के लिये प्रजनन हेतु अतिरिक्त नर मेमने व बेकार भेड़ें एक बैंक स्वरूप होती हैं जिन्हे कभी पैसे की आवश्यकतानुसार बेच कर अपने परिवार की आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है। बाजार में जो मांस बिकता है वह अनुत्पादक भेड़ों या नर मेमनों जिन्हे 4 महीने से एक वर्ष तक की उम्र पर कभी भी बेचा जा सकता है, से ही प्राप्त होता है। कम जन्म भार, कम बाजार भार, कम मांस और अधिक हड्डी होने के कारण यह मांस कम गुणवत्ता का होता है। देशी मेमनों का 5–6 माह की आयु पर 12–15 किग्रा शरीर भार होता है जबकि इनका पालन पोषण गाँवों के आसपास अविकसित चारागाहों पर किया जाता है तथा उनको किसी भी प्रकार का अतिरिक्त चारा व दाना नहीं दिया जाता है। अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि देशी मेमनों की सघन खिलाई करके कम समय में अधिक शारीरिक भार और उत्तम मांस में बदले की 15–18 प्रतिशत क्षमता द्वारा 25 किग्रा मांस हेतु पूर्ण भार प्राप्त करने की क्षमता है। सघन खिलाई से मेमनों की वृद्धि दर 40–50 ग्राम प्रतिदिन से बढ़ाकर 150 ग्राम प्रतिदिन हो सकती है। विभिन्न प्रयोगो के अन्तर्गत 50 भाग चारा (पाला/मूँगफली चारा/खेजड़ी पत्ती) एंव 50 भाग दाने को मिलाकर बनाये गये पूर्ण आहार को खिलाकर 6 माह की आयु पर 35 किग्रा शरीर भार प्राप्त किया गया है। भेड़ पालकों के यहां मेमनों का 18–20 किग्रा मांस हेतु पूर्ण भार 9–12 माह की आयु पर प्राप्त होता है। जबकि 2 माह की आयु पर माँ का दूध छुड़ाकर सघन खिलाई से 25 किग्रा मांस हेतु पूर्णभार 4–5 माह की आयु पर प्राप्त किया जा सकता है। मेमनों में उपरोक्त मांस हेतु पूर्ण भार चराई के साथ साथ 1.5–2 प्रतिशत शारीरिक भार की दर से रातिब मिश्रण की पूरक खिलाई द्वारा 5–6 माह की आयु पर भी प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार भेड़ पालक मेमनों से कम आयु पर अधिक भर प्राप्त कर अतिरिक्त आय प्राप्त कर सकता है। मेमनों को पूरक खिलाई के रूप में दिये जाने वाले आहार को स्थानीय रूप से उपलब्ध परम्परागत चारा स्त्रोतों जैसे उगाई गई घासें, पेड़ों की फलियाँ एंव पत्तियां, घास, फसलों के अवशेष, कम कीमती दाना जैसे मक्का, बाजरा, जौ, मूंगफली या सरसों की खली आदि को मिलाकर बनाया जा सकता है। इस प्रकार से बनाये गये आहार कम खर्च में तैयार किया जा सकता है।

मांस के लिए इस्तेमाल होने वाले जानवरों की जांच

भारत में मांस के लिए प्रयुक्त होने वाले प्रमुख जानवर भेड़ व बकरी हैं। पशु पालक भेड़ व बकरी से ऊन व दूध लेने के बाद मांस हेतु बाजार में विक्रय कर आजीविका कमाते हैं। पशु पालक को इस बात का ज्ञान होना आवश्यक है कि बेचते समय उसके विक्रय मूल्य का सही अनुमान लगाकर ही व्यापारी से उचित मूल्य प्राप्त करें। पशु की पीठ पर पीछे की तरफ हाथ की अंगुलियों से रीढ़ की हड्डी के आस–पास मांसपेशियों के

साथ जमा हुए वसा का अनुमान लगाया जा सकता है। दोनो आगे की टांगों के स्केपुलर क्षेत्र में भी मांस पेशियों के साथ जमी हुए वसा को हाथों से महसूस कर पशु की कीमत को तय किया जा सकता है। अक्सर व्यापारी इस तरीके से पशु के मूल्य को निर्धारित करते हैं। वैज्ञानिक रूप से माना गया है कि पशु के वजन का 45–49 प्रतिशत खाने योग्य मांस प्राप्त होता है। भौतिक रूप से महसूस करके पशु के मांस अनुमानित प्रतिशत तय करें। पशु पालक को व्यापारी से पशु की अच्छी कीमत प्राप्त करनी चाहिये। अच्छी कीमत के लिए पशु स्वस्थ्य होना चाहिए तथा पशु युवा अवस्था वाला होना चाहिए। मानक उम्र 1–2 वर्ष मानी गयी है, जिससे अच्छा मूल्य मिल सकता है। दुर्बल पशु के शरीर पर वसायुक्त मांस पेशियां नहीं होती अतः उससे 30–40 प्रतिशत तक ही मांस प्राप्त होगा। अधिक व्यस्क उम्र के पशु से भी मांस का प्रतिशत कम होने से उसका विक्रय मूल्य कम हो जाता है। मांस हेतु पशु को विक्रय करते समय बीमार पशु विक्रय नहीं करना चाहिये क्योंकि बहुत सी बीमारियों में उपयोग के लिए इस किस्म के मांस से मनुष्य बीमार हो सकता है।

यह आवश्यक है कि भेड़ पालन को लाभदायक बनाने के लिए ग्याभिन भेड़ों एवं मेंमनों का पूरा ध्यान रखना चाहिए एवं उनको पौष्टिक आहार देना चाहिए ताकि बच्चे स्वस्थ हों और अच्छा भार प्राप्त हो एवं भेड़पालक को अधिक से अधिक लाभ प्राप्त हो सके। □

ऊँटो में होने वाली महत्वपूर्ण संक्रामक बीमारियाँ

डॉ. शिरीष डी. नारनवरे
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

मरुस्थलीय क्षेत्रो में ऊँटो का अपना एक अलग महत्व है। वर्तमान में हुए कुछ नवीनतम अनुसंधानों द्वारा ऊँटो के दूध में पाए जाने वाले पौष्टिक तत्वों की वजह से तथा मधुमेह जैसी बीमारी के उपचार में इसके दूध के औषधीय गुणों के कारण इसका महत्व और अधिक बढ़ गया है। ऊंट पालको को अपने ऊँटो के स्वास्थ्य की देखभाल के लिए उन्हें होनेवाली कुछ महत्वपूर्ण बीमारियों के बारे में जानकारी रखना अत्यंत आवश्यक है। इस लेख में ऊँटो में होने वाली कुछ महत्वपूर्ण बीमारियों के लक्षण व उसके उपचार के बारे में जानकारी दी गयी है।

विषाणु जनित रोग

1. चेचक

लक्षण

इस रोग में बुखार के साथ ऊँटो के पूरे शरीर की त्वचा व कभी कभी मुख, पाचनतंत्र तथा श्वसनतंत्र की आतंरिक त्वचा पर छोटी–छोटी फुन्सियाँ आ जाती है। कुछ दिन पश्चात यह सुखकर गिर जाती है व उस स्थान पर निशान छोड़ जाती है। इस रोग में मुँह से लार बहना, आँख तथा नाक से पानी बहना, बाह्यलसीका ग्रंथीयो में सूजन व दस्त तथा गर्भपात जैसे लक्षण दिखाई देते है. इस रोग से ग्रसित ऊंट की मृत्यु भी हो सकती है।

उपचार

एंटीसेप्टीक लोशन जैसे पोटैशियम परमैंगनेट को (0.2 प्रतिशत) पानी में मिलाकर अथवा 3 प्रतिशत आयोडीन सोल्यूशन फुन्सियों पर रोज लगाते रहना चाहिए।

जीवाणुओं के संक्रमण को रोकने के लिए पशु चिकित्सक की सलाह से प्रतिजैविक औषधोपचार शुरू कर देना चाहिए।

2. मूमड़ी

लक्षण

छूत का रोग होने के कारण इसका फैलाव अत्यधिक तेजी से होता है। इस रोग का प्रकोप सामान्यतः मानसून से पहले अथवा बरसात के महीनों में ज्यादा देखने को मिलता है। साधारणतः यह एक अथवा इससे कम उम्र के ऊँटों में पाया जाता है। वयस्क ऊँटों में यह बीमारी नहीं पायी जाती। इस रोग में मुख्यतया मुँह, होंठ, नाक, आँख व गले के आसपास वाली त्वचा पर तीव्र दर्द वाली फुंसियाँ आनी शुरू होती है। कुछ दिन बाद ऊँटों के मुँह व जबड़े में सूजन आ जाती है जो एक सप्ताह तक रह सकती हैं। यह फुन्सिया आगे चलकर घाव भी बन जाती है।

उपचार

एंटीसेप्टीक मरहम जैसे पोटैशियम परमैंगनेट का (0.2 प्रतिशत) पानी में मिलाकर अथवा 3 प्रतिशत आयोडीन सोल्यूशन फुन्सियों पर रोज लगाते रहना चाहिए।

घावों पर मक्खियाँ न बैठे इसका पूर्ण ध्यान रखना चाहिए। मक्खियों को भगाने के लिए घावों पर टॉपीक्यूअर स्प्रे, लोरक्सीन मलहम अथवा हीमॅक्स मलहम लगाया जा सकता है।

जीवाणुओं से संक्रमित घावों के उपचार के लिए तुरंत पशु चिकित्सक की सलाह से प्रतिजैविक औषधोपचार शुरू कर देना चाहिए। उदाहरणार्थ ऑक्सीटेट्रासायक्लीन इंजेक्शन लगातार तीन दिन तक लगाने से घाव जल्दी सूखने में मदद मिलती हैं।

जीवाणु जनित रोग

1. हीमोरेजिक सेप्टिसेमिया

लक्षण

इस रोग में तेज बुखार (105– 107 डिग्री फै) के साथ गले के आसपास सूजन आ जाती है, श्वास

लेने में तकलीफ होती है, तथा श्वास लेते समय घर–घर जैसी आवाज आती है। बाह्यलसीका ग्रंथीयो में सूजन आ जाती है। यदि तुरंत उपचार ना किया जाए तो इस रोग से ग्रसित ऊँट की मृत्यु भी हो सकती है।

उपचार

पशु चिकित्सक की सलाह से तुरंत प्रतिजैविक इजेक्शन लगाये। बुखार के लिए बुखार रोधी इंजेक्शन लगाये।

2. क्षयरोग टी.बी.

लक्षण

इसमें ऊँटो में कमजोरी आ जाती है जो कई सालो तक रहती है. खांसी व श्वास लेने में तकलीफ जैसे लक्षण दिखाई देते है व अंततः ऊंट की मृत्यु हो जाती है.

उपचार

इसका उपचार काफी लंबा व खर्चीला है व इसमें ठीक होने की संभावना काफी कम होती है इसलिए ऐसे ऊँटो को या तो बेच दे अथवा अन्य स्वस्थ्य ऊँटो से दूर ही रखे।

3. परायक्ष्मा

लक्षण

इसमें ऊँटो को लंबे समय से दस्त रहते है जो किसी भी दवाई से ठीक नहीं होते। ऊँट अत्यधिक कमजोर हो जाता है व हड्डिया दिखाई देती है

उपचार

इसका उपचार भी काफी लंबा व खर्चीला है व इसमें ठीक होने की संभावना काफी कम होती है। इसलिए ऐसे ऊँटो को या तो बेच दें अथवा अन्य स्वस्थ्य ऊँटो से दूर ही रखे।

4. ब्रुसेल्लोसिस

लक्षण

इस रोग से ग्रसित ऊँटनियाँ गर्भावस्था में आखरी 3 महीने में गर्भ गिरा देती है अथवा समय से पहले ब्याती है। इन ऊँटनियो में जार नहीं निकल पाता व इनके बच्चे भी कमजोर होते है। नर ऊँटो में अण्डकोशो में सूजन आ जाती है।

उपचार

पशु चिकित्सक की तुरंत सलाह लेनी चाहिए व प्रतिजैविक औषधोपचार देना चाहिए।

5. नवजात ऊँटो में दस्त

लक्षण

यह बीमारी नवजात ऊँटो में जन्म से लेकर 10–15 दिनों की आयु तक पाई जाती है. इस रोग में तीव्र दस्त तथा बुखार के लक्षण दिखाई देते है। जोड़ो तथा नाभि में सूजन जैसे लक्षण दिखाई देते है। दस्त की वजह से शरीर में पानी की कमी हो जाती है।

उपचार

शरीर में पानी की कमी दूर करने के लिए डी. एन.एस. का इंजेक्शन शिराओ में दे, साथ ही एंटीबायोटिक इंजेक्शन भी दे।

6. एकटीनोमायकोसिस

लक्षण

इस रोग में जबड़ों में सूजन आती है व जबड़े की हड्डी में फोड़ा होकर उसमें से मवाद बहते रहता है इससे जानवर को चबाने में तकलीफ होती है और वह चारा खाने में असमर्थ हो जाता है।

उपचार

जबड़े पर एंटीसेप्टिक मलहम जैसे टॉपीक्यूअर स्प्रे, लोरक्सीन मलहम अथवा हीमॅक्स मलहम लगाना चाहिए तथा पशुचिकित्सक की सलाह से प्रतिजैविक औषधोपचार देना चाहिए।

परजीवी जनित रोग

1. सरातिबरसा

लक्षण

यह ऊँटो में पाई जाने वाली एक मुख्य बीमारी है। इसका प्रसार मक्खियो के काटने से होता है। इसमें तेज बुखार, कमजोरी, एनीमिया व गर्भाधान ऊँटनियों में आखिरी 3 महीनो में गर्भपात अथवा समय से पहले ब्याना जैसे लक्षण पाए जाते है। इसका निदान रक्त के नमूनों की जाँच से तुरंत किया जा सकता है।

उपचार

पशु चिकित्सक की सलाह से एंट्रीसाइड इंजेक्शन लगाना चाहिए साथ ही कमजोर जानवरों को विटामिन बी काम्प्लेक्स का इंजेक्शन लगाना चाहिए।

2. एनाप्लास्मोसिस

लक्षण

इस रोग में पीलिया, एनेमिया, तेज बुखार जैसे लक्षण दिखाई देते है. इस रोग का प्रसार चींचड़ो, मक्खियों, अथवा मच्छरो के काटने से होता है. इसका निदान भी रक्त की जाँच से तुरंत संभव है.

उपचार

पशु चिकित्सक की सलाह से ओक्सिटेट्रासायक्लिंन इंजेक्शन दे।

□

ऊँट पालन एवं प्रजनन प्रबन्धन

डॉ. उमेश कुमार बिस्सा एवं डॉ. शरत चन्द्र मेहता
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

ऊँट भारत के उत्तर पश्चिम भाग का महत्वपूर्ण एवं बहु उपयोगी पशु है। ऊँट राजस्थान की सांस्कृतिक धरोहर के रूप में भी पहचाना जाता है। भारत में ऊँटों की संख्या लगभग 5.17 लाख है जिसमें से राजस्थान में लगभग 4.30 लाख तथा उसके बाद हरियाणा एवं गुजरात में ज्यादा ऊँट पाए जाते हैं। देश में मशीनीकरण, चरागाह की कमी, शिक्षा एवं आधुनिकीकरण आदि कारणों से ऊँटों की संख्या में लगातार गिरावट आ रही है परन्तु आज भी रेगिस्तानी इलाकों में ऊँट का अपना महत्व है। राजस्थान में ऊँट सभी जिलों में पाए जाते हैं लेकिन ज्यादा ऊँट राजस्थान के उत्तर पश्चिम जिलों में पाए जाते हैं। राजस्थान में मुख्य रूप से बीकानेरी, जैसलमेरी व मेवाड़ी नस्ल पाई जाती है।

राजस्थान में ऊँटों का उपयोग मुख्य रूप से सामान ढ़ोने, गांवों से शहर सामान लाने जैसे चारा, लकड़ी, अनाज आदि व वापस गांव में अन्य सामान ले जाने, सवारी के काम एवं हल चलाने के काम में आता है। कई शहरों में ऊँट गाड़ों से अन्य प्रकार के कार्य जैसे पानी, पटिटयां व मार्बल, गैस सिलेण्डर एवं सब्जियां ढ़ोने के काम भी लिए जाते हैं। राजस्थान में रेतीले इलाकें में दो पहियों के गाड़े सुगमता से चलते है जबकि हरियाणा व गुजरात में प्राय: चार पहियों वाले गाड़ों का उपयोग किया जाता है। सामान ढ़ोने के साथ ऊँटों को खेती में हल जोतने के काम लिया जाता है तथा इनके अलावा सवारी हेतु ऊँटों का उपयोग लिया जाता है। ऊँट रखने वाले कई परिवार इसके दूध को भी उपयोग में लेते हैं। ऊँट के दूध की भी व्यावसायिक तौर पर अच्छी कीमत है तथा इसका दूध पौष्टिक व स्वास्थ्यवर्धक है। दक्षिणी राजस्थान में व गुजरात में ऊँट का दूध बहुतायत में बिकता है। दूध के उत्पादन को बढ़ाने की आवश्यकता है जिससे अन्य क्षेत्रों में ऊँट पालकों को व्यावसायिक तौर पर फायदा मिलें। आजकल ऊँट की हड्डियों एवं चमड़े से बनी भी हस्त शिल्प वस्तुओं का प्रचलन बढ़ रहा है जो कि पर्यटकों में काफी लोकप्रिय है। पश्चिम राजस्थान में देश की सीमा पर सीमा सुरक्षा बलों द्वारा ऊँट से देश की सीमा निगरानी में काम में लिया जाता है। उपरोक्त सभी कार्यो के लिए ऊँटों का शारीरिक रूप से स्वस्थ होना भी अति आवश्यक है।

ऊँट राज्य के पश्चिमी भाग की गर्मी एवं शुष्कता को चरमसीमा तक सहन कर सकता है तथा खाने पीने की कमी होते हुए भी अन्य पशुओं की अपेक्षा ज्यादा काम व लम्बे समय तक निर्वाह कर सकता है। ऊँट की एक विशेषता यह भी है कि ऊँट रेगिस्तान में पाए जाने वाले सभी तरह के पेड़-पौधों को खाता है, जो वनस्पति दूसरे जानवर नहीं खाते हैं उन सभी पर ऊँट निर्वाह कर सकता है। ऊँट अकाल में भी दूसरे जानवरों की अपेक्षा कम प्रभावित होता है तथा अकाल में ऊँटों की मृत्युदर दूसरे जानवरों की तुलना में कम है।

आहार प्रबन्धन

ऊँटों को प्राय: टोलों में रखा जाता है, टोले दूर जंगल में जाते हैं तथा वहीं पर चरते हैं। इससे ऊँट पालकों को उनके पालन में ज्यादा खर्च वहन नहीं करना पड़ता है। जो ऊँट गाड़े में, हल चलाने में एवं सवारी हेतु रखे जाते हैं, उन्हें घर में रखकर भी चारा व दाना दिया जाता है। जिन ऊँटनियों को दूध के लिए रखा जाता है वे दिन में जंगल में चर कर शाम को घर या खेत में वापस आती है या जंगल में ही उनका दूध एकत्र कर मंगवा लिया जाता है।

एक साल तक टोर्डियों को दूध ही पिलाया जाता है वैसे एक साल तक के टोर्डियों को 2-2.5 किलो चारा, एक से दो साल के टोर्डियों को 5 किलों चारा, 2-3 साल के टोडियों को 8 किलो चारा, तीन साल के ऊपर के ऊँटों को 12 किलो चारा तथा बड़े ऊँटों को कार्य के अनुसार 14 से 20 किलो तक चारा दिया जाता है। चारे के अलावा ऊँटों को दाना उनके कार्य, दूध उत्पादन एवं चारे की उपलब्धता को ध्यान में रखकर दिया जाता है। बड़ी साँडों को तीन से 4 किलो तक दाना दूध की उत्पादकता के अनुसार दिया जाता है। टोले में ऊँटों को पानी दिन में कम से कम एक बार अवश्य पिलाया जाना चाहिए। कार्य व मौसम के अनुसार सप्ताह में दो या तीन

बार भी पिलाया जा सकता है। वयस्क ऊँट लगभग 20-40 लीटर तक पानी पी सकता है। प्राय: ऊँट जंगल में उपलब्ध सभी प्रकार की वनस्पतियों को खा लेता है। लेकिन जब ऊँटों को घर में रखकर काम में लिया जाता है तो ग्वार, मूंगफली, मोठ एवं चना आदि का चारा उपरोक्त मात्रा अनुसार दिया जा सकता है। चारे के अलावा ऊँटों को नमक एवं खनिज लवण 50 से 100 ग्राम तक नियमित रूप से दिया जाना चाहिए।

स्वास्थ्य प्रबन्धन

ऊँट में दूसरे जानवरों की तुलना में इसके शुष्क एवं प्राकृतिक वास के कारण स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं कम होती है। एक स्वस्थ ऊँट हमेशा चौकन्ना रहता है, चमड़ी में चमक रहती है तथा प्राय: आँखें खुली रखता है। स्वस्थ जानवर हमेशा टोले के साथ रहेगा जबकि बीमार ऊँट टोले से दूर या पीछे रहेगा। स्वस्थ ऊँट प्राय: जुगाली करता नजर आएगा। वह मींगने करने पर किसी प्रकार का जोर नहीं लगाएगा। यदि मींगनों के आकार या बनावट में फर्क होता है तो इसका मतलब ऊँट के पेट संबंधी कोई समस्या है। स्वस्थ ऊँट पेशाब थोड़े-थोड़े समय बाद करता रहता है। एक स्वस्थ ऊँट के पसीना तब ही आता है जब उससे बहुत ज्यादा काम लिया जाता है या वातावरण का तापमान बहुत अधिक होता है।

प्राय: ऊँटों में तीन प्रकार की समस्या ज्यादा होती है। उनका पूर्व बचावकारी ईलाज समय-समय पर करते रहे तो काफी हद तक स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं से बचा जा सकता है।

1. तिबरसा रोग - यह रोग ट्रीपेनोसोमा ईवान्साई नामक रक्त परजीवी द्वारा होता है। यह परजीवी शरीर में एक विशेष प्रकार की मक्खी के काटने से होता है। इसमें ऊँट को बुखार आता है, वजन कम हो जाता है, शरीर के नीचले हिस्से में ईडर के चारों तरफ सूजन आ जाती है एवं इस रोग से पीड़ित ऊँट के मींगने छोटे व तिकोने होते है, इसके लिए बाजार में उपलब्ध टीके 'एंट्रीसाईड, टिवानसाई या ट्राईक्रीन आदि दवा पशु चिकित्सक की सलाह से शारीरिक भार के अनुसार साल में तीन या चार बार लगवाने चाहिए।

2. आन्तरिक परजीवी प्रकोप - ऊँटों के पेट व आंतों में कई प्रकार के परजीवी पाए जाते है। इससे ऊँट कमजोर हो जाता है तथा कई बार दस्त भी लगते है। इसके लिए साल में कम से कम दो बार वर्षा के मौसम से पहले एवं बाद में पेट के परजीवी को खत्म करने हेतु दवा देनी चाहिए। इस हेतु बाजार में उपलब्ध पानाक्यूर, नीलवर्म आदि दवाएं पशु चिकित्सक की सलाह से देनी चाहिए। प्राय: यह देखा गया है कि समय पर ईलाज न करवाने पर शरीर में लवणों की कमी के कारण ऊँटों में पाईका नामक बीमारी हो जाती है जिसमें पशु पत्थर कंकर इत्यादि खाने लगता है। यदि समय पर परजीवी नाशक दवाई न पिलाई जाए तो लम्बे समय के बाद पाईका नामक बीमारी से छुटकारा नहीं मिलता क्योंकि यह पशु की आदत बन जाती है।

3. पांव या खुजली - बीमारी चमड़ी का रोग है जो कि बाह्य परजीवी के कारण होता है। इसमें जानवर शरीर को किसी के सहारे जैसे दीवार, पेड़ आदि से खुजली करता है, इससे खुजली के स्थानों पर बाल उड़ जाते है। चमड़ी सूखने लगती है। ऊँट खाना-पीना कम कर देता है। वजन घटता है तथा कई दफा चमड़ी से खून बहने लगता है। इसके लिए साल में कम से कम दो या तीन बार डेल्टामैथ्रिन (ब्युटॉक्स) या अन्य ऑर्गनोफॉस्फोरस दवाओं के घोल का पशु चिकित्सक की सलाह से छिड़कना चाहिए। अगर उपरोक्त आन्तरिक या बाह्य दोनों ही परजीवी का प्रकोप होता है तो आईवर मैक्टीन नामक दवा पशु चिकित्सक की सलाह अनुसार देनी चाहिए।

प्रजनन प्रबन्धन

ऊँटों में प्रजनन ऋतु आधारित होता है एवं प्रजनन का समय नवम्बर से लेकर मार्च तक रहता है। ऊँट की प्रजनन दर बहुत धीमी है। नवजात ऊँटों में मृत्युदर भी अधिक है। प्रजनन हेतु नर ऊँट अच्छी नस्ल का होना चाहिए और शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ होना चाहिए तथा शारीरिक भार न ज्यादा व न कम होना चाहिए। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि ऊँट के कुमरी न हो अन्यथा ऊँट के मादा ऊँट पर बैठने और उतरने में परेशानी होती है। प्रजनन के लिए 6 से 14 साल तक की आयु उपयुक्त है। ऊँट का ईडर व कोहनियां आपस में टकरानी नहीं चाहिए। ऊँटों में 'झूट' के दौरान मुंह से गुल्ला निकाल कर विशेष प्रकार की आवाज करता है और दांतों को रगड़ने से विशेष प्रकार की आवाज निकालता है तथा पीछे के पांवों को चौड़ा करके पूंछ को ऊपर व नीचे फटकारता है, ये सभी 'झूट' के लक्षण है। झूट में ऊँट खाना-पीना कम कर देता है, अत: उसे अतिरिक्त दाना तथा 1 किलो गुड़ व आधा किलो तेल प्रजनन काल के दिनों में देना चाहिए। टोले में एक नर ऊँट

लगभग 50 मादाओं के लिए पर्याप्त है। टोले में हर तीन साल बाद नर ऊँट बदल लेना चाहिए ताकि संवृत प्रजनन (इन ब्रीडिंग) न हो।

मादा ऊँट लगभग 3-4 साल की आयु में वयस्क होती है, परन्तु 4-5 वर्ष की आयु में ग्याभिन करवाया जा सकता है। मादा ऊँटों को सर्दियों में नवम्बर से मार्च तक कभी भी ग्याभिन करवाया जा सकता है। मादा ऊँटों में गर्भ काल लगभग 13 महीनों का होता है अत: सर्दियों में मादा ऊँट ग्याभिन होती है, इस प्रकार अगले साल सर्दी के मौसम में ही ब्याती है। ब्याने के बाद अगली सर्दी में फिर ग्याभिन करवाई जाती है, इस प्रकार एक मादा ऊँट तीन साल में दो बच्चे दे पाती है। गर्भ धारण के समय मादा ऊँट स्वस्थ होनी चाहिए। मादा ऊँट 4 साल से लेकर 17-18 साल तक की आयु तक प्रजनन के योग्य होती है। यह देखा गया है कि ऊँट के मादा ऊँट पर संसर्ग करवाने के यदि 48 घंटे के अंतराल के बाद उसी ऊँट से संसर्ग करवाने से गर्भ धारण करने की संभावना बढ़ जाती है। 10 महीनों के बाद गर्भित सांड़ों पर अधिक ध्यान देना चाहिए, यदि वह कमजोर है तो चारे-दाने का विशेष प्रबंधन करना चाहिए। गर्भ के अंतिम काल में मादा ऊँटों को टोले से अलग रखना चाहिए। मादा ऊँट ब्याने से पहले दूसरी सांडों से अलग रहती है, बार-बार उठती व बैठती है, थनों का आकार बढ़ जाता है। मादा ऊँट के ब्याने से पहले उसके प्रजनन अंग ढीले या शिथिल पड़ जाते हैं तथा पूंछ के ऊपरी सिरे के दोनों ओर गडडे पड़ जाते हैं। अत: उस समय मादा ऊँट का विशेष ध्यान रखना चाहिए क्योंकि वह ब्याने का नजदीकी समय होता है। हमें यह कोशिश रखनी चाहिए कि मादा ऊँट के ब्याते समय कोई जानकार व्यक्ति का पास होना आवश्यक है। बच्चे के जन्म के साथ ही उसे सांड को सूंघाना चाहिए जिससे कि मादा ऊँट अपने बच्चे को अपना लें। मादा ऊँट की जर 8 से 12 घंटे के भीतर निकल जानी चाहिए अन्यथा पशु चिकित्सक या पशु चिकित्सा सहायक को दिखाकर निकलवाना चाहिए व दवा दिलवानी चाहिए। बच्चे के नाड़े को नाभि के 4 या 5 ईंच की दूरी पर काटना चाहिए। बच्चे के जन्म के बाद उसकी नाभि में भी बीटाडीन (आयोडीन घोल) या एंटीसेप्टिक दवा लगानी चाहिए।

बच्चे के जन्म लेते ही उसके नाक को साफ करना चाहिए तथा उसके शरीर को पोंछना चाहिए। बच्चा ब्याने के 1 घंटे बाद स्वयं दूध पीने की कोशिश करता है, यदि न पी सके तो मदद करनी चाहिए। मां के पहले दूध को 'खींस' (कॉलेस्ट्रॉम) कहते है। यह खीस (दूध) 5-6 दिनों तक आता है। यह दूध रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाता है तथा इसमें पोषक तत्व बहुतायत में होते है। बच्चे के जन्म के बाद मां के आहार का ध्यान रखना चाहिए तथा उसे गुड़, तेल देना चाहिए। ब्याने के बाद अगर बच्चा पूरा दूध न पी सके तो थन से बचा हुआ दूध निकाल देना चाहिए अन्यथा थन खराब हो जाते है। प्राय: बच्चों का जन्म सर्दियों में होता है, अत: ठण्ड से बचाव करना चाहिए और यदि जन्म अप्रैल-मई में होता है तो गर्मी से बचाव करना चाहिए। बच्चा ब्याने के बाद 1-2 घंटे में मल व पेशाब करता है।

□

अश्व रख-रखाव एवं प्रबन्धन

डॉ. राम अवतार लेघा, डॉ. रमेश कुमार देदड़ एवं डॉ. यशपाल
राष्ट्रीय अश्व अनुसंधान केन्द्र, अश्व उत्पादन परिसर, बीकानेर

अश्व प्रजाति के पशुओं में घोड़ा, गंदर्भ एवं खच्चर आते है। इन सभी का उपयोग भारवहन में होता है। इनमे से घोड़े का उपयोग भारवहन के अलावा घुड़सवारी में भी होता है। आजकल घुड़सवारी के बारे में जागरूकता व् रूचि दोनों बढ़ती जा रही है । अश्व का उपयोग कई खेलों जैसे पोलो, टेंट पेगिंग, शो जंपिंग में भी होता है। अश्वारोहण के खेल विश्व भर में प्रसिद्ध है व ओलम्पिक खेलों में भी इनका समायोजन है। भारतीय सेना व अनेक राज्यों की पुलिस भी घुड़सवारों को भर्ती करती है जिससे मनोरंजन के साथ–साथ रोजगार के विकल्प भी खुलते हैं। उत्तर भारतीय समाज में दुल्हे की सवारी के रूप में अश्व का उपयोग तो सर्वविदित है। जिससे भी अश्वपालकों को भरपूर रोजगार के अवसर उपलब्ध होते हैं। घुड़सवारी से होने वाले व्यायाम व स्वास्थ्य के फायदे तो इन सभी से ज्यादा महत्वपूर्ण है। हाइड्रोकार्बनिक ईंधनों पेट्रोल व् डीजल के बढ़ते हुए दामों व प्रदूषण ने भी हमें एक बार फिर से परिवहन के सस्ते व् प्रदूषण रहित विकल्प घोड़े के बारे में सोचने पर विवश कर दिया है।

घोड़े के उचित रखरखाव इसके व्यवसाय से अधिक फायदा होने के लिए आवश्यक है कि अश्व पालकों को इसके रखरखाव के सम्बंध में निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए –

घोड़े की आदतें एवं स्वभाव

अश्व पालको को अपने अश्वों की आदतों एवं स्वभाव के बारे में समुचित जानकारी होनी चाहिए। इससे इनके रख रखाव के बारे में भी समुचित जानकारी होनी चाहिए। अगर अश्व पालक अपने अश्वों के स्वभाव एवं आदतों से वाकिफ है तो वह अपने घोड़ो को आसानी से काबू कर सकता है और विभिन्न कार्य आसानी से करवा सकता है। इससे अश्वों को समूह में रखने एवं खिलाने–पिलाने में भी मदद मिलती है।

अस्तबल की साफ–सफाई

सुबह उठते ही अस्तबल की नियमित सफाई अश्वों को स्वस्थ रखने के लिए अति आवश्यक है। अस्तबल में सुबह और शाम दो बार लीद उठानी चाहिए एवं झाड़ू से सफाई करनी चाहिए। अस्तबल के पक्के फर्श को पानी से अच्छी तरह धोना चाहिए। चारे की खुरालियों से पहले का चारा निकालकर रोज सफाई करनी चाहिए ताकि चारे के साथ मिट्टी का मिश्रण ना हो पाए और अश्वों का पेट दर्द होने से काफी हद तक बचाया जा सके। इसी प्रकार पानी की खुरलियों को भी प्रतिदिन साफ करना चाहिए और हर 15 दिन बाद पानी की खुरलियों में चूने की पुताई करनी चाहिए जिससे अश्वों को पानी द्वारा होने वाले संक्रमण से बचाया जा सके।

व्यायाम

अश्व स्वास्थ्य प्रबन्धन का पोषण जितना ही महत्वपूर्ण पहलू है व्यायाम। अश्वों को नियमित रूप से व्यायाम करना चाहिए। अश्वों की मांशपेशिया व् शारीरिक बनावट ही ऐसी है कि उनको व्यायाम चाहिए। हमेशा आराम पर रहने वाले घोड़े को सवारी, दौड़ या अन्य काम में लेने पर उसकी मांसपेशियों में बिना ऑक्सीजन के प्रयोग के ही उर्जा बनने लगती है। परिणामस्वरूप बहुत सारा लेक्टिक अम्ल एकत्रित हो जाता है, जो मांसपेशियों को नष्ट करने लगता है, इससे अश्व में लंगड़ापन व् जकड़न हो जाती है, अश्व स्थायी रूप से बैठ भी सकता है जो कि वापिस खत्म नहीं होता. मांसपेशियों की प्रोटीन भी मूत्र द्वारा बाहर आने लगती है जिससे किडनी अपना काम करना बंद कर देती है नियमित रूप से काम पर ले जाने वाले अश्वो को भी जब आराम दे दिया जाता है, व वापिस काम में लिया जाता है तो उन घोड़े में भी यह दिक्कत आ जाती है ,

इसलिए आराम दिए हुए घोड़ो को एक तो खुराक कम देनी चाहिए व दूसरा उनको आराम के बाद काम पर ले जाने पर हल्की व्यायाम भी करना चाहिए।

अश्वों को स्वस्थ बनाये रखने के लिये नियमित रूप से व्यायाम से अश्वों के पैर भी मजबूत होते हैं और वे स्वस्थ रहते है। तेज दौड़ से पहले थोड़ा चलाकर या घुमा फिरा कर घोड़े को गर्म कर लें। व्यायाम के तुरन्त बाद घोड़े का पसीना सुखाएं, खरहरा करें तथा कुछ आराम के बाद ही पानी व दाना थोड़ी थोड़ी मात्रा में दें।

खरहरा

अश्व पशुओं में नियमित रूप से खरहरा करना आवश्यक है व लाभदायक है। इससे शरीर की मालिश होती है, रक्त संचार बढ़ता है तथा बाल भी साफ रहते हैं। फलस्वरूप परजीवियों व त्वचा रोगों से बचाव होता है। इसके अतिरिक्त खरहरा करने से पशु के स्वस्थ होने तथा किसी प्रकार की चोट आदि लगने का भी पता लग जाता है। खरहरा सारे शरीर पर करना चाहिये। अयाल, पूंछ के बाल, टागों, खुरों, नथूनों को भी साफ करना चाहिये।

घुड़साल में रखें घोड़ों को कम से कम दिन में एक बार खरहरा अवश्य करना चाहिये तथा प्रत्येक बार व्यायाम या काम पर ले जाने से पहले व तुरन्त बाद खरहरा करना अति आवश्यक है।

दांतों की देखभाल

अश्वों के दांतों का समय–समय पर निरीक्षण कर लेना चाहिए, क्योंकि अश्वों के ऊपर व नीचे वाले जबड़े के दांत आपस में घिसते रहते हैं। कई बार यह घिसाई उचित तरीके से नहीं हो पाती तब कोई कोई दांत ज्यादा बढ़ कर तीखा हो जाता है व मुहं में घाव उत्पन्न कर देता है जिससे खून रिश्ता रहता है, जो की बाहर से देखने से पता नहीं चलता व् अश्व कमजोर होता जाता है तीखे दांतों की वजह से चारे व दाने की भी उचित तरह से पिसाई नहीं हो पाती, ऐसे अश्वों को बार बार पेट दर्द होता रहता है। तीखे दांतों की समय समय पर टूथ रासपर से घिसाई करते रहना चाहिए।

पैर व खुर की देखभाल

अश्वों के खुरो की सफाई उन्हें कई प्रकार की बीमारीयों व संक्रमण रोगों से बचाती है। मलमूत्र में खड़े रहने वाले अश्वों में थ्रस हो जाता है जो लंगड़ेपन का एक कारण है। इसलिये खुरों की उचित देखरेख के लिये घुड़साल का स्वच्छ होना अतिआवश्यक है। अश्वों में समय समय पर कम से कम भार की नाल लगवानी चाहिये। नाल लगे घोड़े में हर छः से आठ सप्ताह के बाद खुरों की कटाई की जानी चाहिये। गर्मीयों में खुरों को अधिक सुखने से भी बचाना आवश्यक है। पानी पीने की नांद के आस–पास की जगह को गीला रखकर खुरों को सुखने से बचाया जा सकता है।

खुर का स्वस्थ होना खुर के तलुवा की अवस्था पर निर्भर करता है। अगर सख्त व सुखा होगा तो उसका भूमि के साथ उचित सम्पर्क नही रहेगा, जिससे पावं में रक्त संचार कम होगा। इस कारण खुर और अधिक सूखा हो जाता है। खुर की छटाई व नाल इस तरह से लगाई जाये कि जब पांव मैदान पर पड़े तो फरॉग पर उचित दबाव बना रहे क्योंकि फरॉग पांव में रक्त संचार को उत्तेजित करता है।

बालों की कटाई

अश्वों में साल में एक दो बार बालो की कटाई भी करानी चाहिए जिससे इसमें फसी गंदगी एवं इसमें पल रहे परजीवियों से पशुओं को बचाया जा सके घोड़ों में इनकी पूंछ एवं गर्दन के बालों की कुछ कटाई की जाती है। बाकी शरीर के बाल काटने की उस परिस्थितियों में नही होती जब घोड़े की रोजआना मालिस एवं खरहरा हो क्योंकि इस दौरान बाल अपने आप टूटकर झड़ जाते हैं।

मादा अश्वों की टीजिंग करना

मादा अश्वों में मदकाल की पहचान करने के लिए रोजाना टीजर के सामने लाकर टीजिंग करवाना अति आवश्यक है। यदि मादा अश्व गर्मी में है तो वह टीजर में रूची दिखाती है और बार–बार पेशाब करती है। इससे सही समय पर मदकाल की पहचान हो जाती है और सही समय पर मादाओं में प्राकृत्रिक/कृत्रिम गर्भाधान कराकर प्रजनन क्षमता को बढ़ाया जा सकता है।

अश्व प्रजनन

सामान्यतया अश्व पशु 3–3.5 वर्ष की उम्र में प्रजनन योग्य हो जाता है। घोड़ियों में जब शरीर भार

300 कि.ग्रा. के आस पास हो तो वह प्रजनन योग्य हो जाती है। अश्वों में मदकाल सामान्यतया 5–10 दिन का होता है और इनका मदचक्र 21 – 3 दिन का होता है। इसलिये मादा अश्वों में गर्भाधान 5वें एवं 7वें दिन करना चाहिए। क्योंकि इसी दौरान अण्डोत्सर्जन होने की सम्भावना होती है। अगर अल्ट्रासाउण्ड की सुविधा हो तो सही समय का अण्डों की साइज के हिसाब से अन्दाजा लगाकर गर्भाधान करना चाहिए। गर्भाधान जहां तक हो सके अण्डोत्सर्ग के नजदीकी समय में होना चाहिये, जिससे गर्भाधारण करने की सम्भावना बढ़ जावे। गर्भाधान कराने के बाद गर्भ जाँच करानी चाहिए। यह जाँच अल्ट्रासाउण्ड से गर्भाधान के 15 दिन बाद की जा सकती है। अगर मादा अश्व ग्याभिन नहीं हुई हो तो 21 दिन बाद दुबारा मदकाल में आ जाती है और अगर ग्याभिन हो गई है तो दुबारा मदकाल में नही आती है।

ब्याने के नजदीक ग्याभिन घोड़ियों को भी विशेष ध्यान देने की जरूरत होती है। गर्भित घोड़ियों को बड़े समूह में नही रखना चाहिए क्योंकि बड़े समुह में घोड़ियां आपस में लडकर चोट पहुचा सकती है और इससे गर्भपात होने का खतरा बना रहता है। ब्याने से करीब 15 दिन पहले घोड़ियों को यदि सुविधा उपलब्ध हो तो साफ–सुथरे कक्ष मे स्थानान्तरित कर देना चाहिए। ब्याने के लक्षणों को ध्यान में रखते हुए घोड़ी की निगरानी रखनी चाहिए। घोड़ियां ज्यादातर रात को ब्याती है, इसलिए रात के समय एक आदमी की ड्यूटी ब्याने वाली घोडियों के लिए होनी चाहिए जिससे घोड़ियों के ब्याते समय किसी प्रकार की कठिनाई हो तो उसका समाधान किया जा सके और ब्याने वाली घोड़ी एवं बच्चे को सुरक्षित/जीवित रखा जा सके। नवजात अश्व शिशु के बाहर आते ही उसकी नाक से झिल्ली को हटाकर साफ कपड़े से पौछना चाहिए। बच्चे के नाभि को 2–3 इंच लम्बाई पर नई ब्लेड से काटकर साफ धागे से बांधकर टिक्चंर आयोडिन लगाना चाहिए।

इसी प्रकार नवजात अश्व शिशु को जितना जल्दी हो सके मां का दुग्ध (खीस) पिलाना चाहिए जिससे नवजात अश्व शिशु में बीमारियों से लड़ने के लिए प्रतिरोधक क्षमता आ सके।

अश्व पोषण

अश्व शुद्ध शाकाहारी एवं सरल उदर वाला प्राणी है इसलिये इस जाति के पशुओं को थोड़ो थोड़ा चारा तथा दाना दिन में कई बार बांटकर खिलाना उचित है।

अश्व आहार के सन्दर्भ में आवश्यक बातें इस प्रकार है :–

- अश्वों के पेट का आकर छोटा होता है, इसलिए यह बहुत सा चारा एक साथ नहीं खा सकता, इसलिए अश्वों को दिन में कई बार चारा डालना होता है, ज्यादा देर तक भूखा रखने से अश्वों के पेट में नासूर बन सकते हैं, व बहुत सा चारा एक साथ डाल देने से अश्व अपनी शारीरिक आवश्यकता से ज्यादा खा लेते हैं, जो की अश्व के स्वास्थ्य के लिए ठीक नहीं है
- कभी भी राशन में अचानक परिर्वतन ना लाया जाये, इससे उदर शूल हो सकता है। हमेशा राशन में बदलाव धीरे–धीरे 5–7 दिनों में लायें।
- सामान्य नर या मादा व्यस्क अश्व को उसके शारीरिक भर का कुल एक प्रतिशत से दो प्रतिशत शुष्क आहार की आवश्यकता होती है जिसका एक तिहाई हिस्सा हमें दाने से पूर्ण करना चाहिए, उसमे भी अच्छी गुणवता की प्रोटीन वाली दालें अवश्य होनी चाहिए, क्योंकि अश्व रोमन्थी पशुओं की तरह चारे में मौजूद नत्रजन से प्रोटीन बनाने में सक्षम नहीं होते।
- पशुओं को हरा चारा प्रर्याप्त मात्रा में देने से विटामिन की जरूरत पूरी हो जाती है।
- शारीरिक वृद्धि, उत्पादन, कार्य मात्रा, गर्भ अवस्था के अनुसार राशन की मात्रा बढ़ाते/घटाते रहना अति आवश्यक है।
- खच्चर और गर्दभ कभी भी अपनी आवश्यकता से अधिक नही खाते हैं जबकि घोड़ों में खुराक नियंत्रण बहुत आवश्यक है क्योंकि वे अक्सर आवश्यकता से अधिक खा लेते हैं और कॉलिक, लंगड़ापन व मोटापे का शिकार हो जाते है।
- हरे चारे, सूखे भूसे व दाने का अनुपात पशु के कार्यभार व जरूरत के अनुसार होना चाहिये। अधिक से पशु तोंदिला व अधिक दाने से पेट में दर्द का शिकार हो सकता है। अधिक मात्रा में दाना खाने से घोड़ों में लगंड़ापन हो सकता है। राशन हमेशा नियत समय पर दें।
- गर्भ धारण किये हुए पशुओं को अधिक बरसीम नहीं खिलानी चाहिये क्योंकि इसमें इस्ट्रोजन नामक पदार्थ ज्यादा मात्रा में होता है जिससे गर्भपात का खतरा रहता है।
- कभी भी गंदा, गीला, गला–सड़ा व बासी राशन घोड़ों को न खिलाएं।

■ खाने की खुरली व पानी की नाद फर्श से लगभग तीन फुट की ऊंचाई पर होनी चाहिये। घुड़साल में हर समय स्वच्छ पानी उपलब्ध होना चाहिये।

■ तेज दौड़ या सख्त कार्य के बाद थके हुये घोड़े को एक दम न तो दाना खिलाएं और न ही पूरी मात्रा में पीने के लिये पानी दें, लेकिन सूखा चारा खिलाने से कोई नुकसान नहीं है।

■ घोड़े को हाथ से खिलाने की आदत न डाले। इससे घोड़े की काटने की आदत को प्रोत्साहन मिलता है। लीद का बदबूदार होना दर्शाता है कि अश्व पाचन समस्या से ग्रस्त है।

■ कई बार पशु लीद खाते हुये पाये जाते है जो कि आवश्यक तत्वों की कमी के कारण होता है। राशन में तत्वों व विटामिनों की उचित मात्रा होनी चाहिये।

अश्वों को सर्दी एवं गर्मी से बचाव

अष्वों को अत्यधिक सर्दी एवं गर्मी दोनो से ही बचाना अति आवश्यक है। नहीं तो, अश्व इन दोनो को सहन नही कर पाएगें एवं बीमार पड़ जाएंगें। जब अधिक सर्दी पड़नी शुरू हो जावे तो अश्वों को रात के समय अस्तबल के अन्दर करके दरवाजे बन्द कर देने चाहिये एवं खिडकियों एवं दरवाजों पर अगर किवाड़ नही हो तो उन पर बोरियां इत्यादि लगानी चाहिए जिससे अस्तबल में सीधी हवा प्रवेश ना करें। इसी तरह रात को पशुओं के शरीर पर झूल बांधकर रखनी चाहिए। अस्तबल के अन्दर फर्श पर बिछावन की परत बिछानी चाहिए जिससे पशु का ठण्डे फर्श से सीधा सम्पर्क ना बने।

अत्यधिक गर्मी से पशुओं को बचाने के लिए अस्तबल में पंखे, कूलर या टाट का प्रयोग करना चाहिए। बाड़ों में छायादार वृक्ष होने चाहिए। अस्तबल के आस पास भी पेड़ पौधे लगाने चाहिए जिससे वहाँ का वातावरण ठीक रहे। गर्मी के मौसम में अगर चरने के लिये भेजना हो तो सुबह एवं शाम के समय भेजना चाहिए ताकि पशुओं को गर्मी से बचाया जा सके। गर्मी में ठण्डे पानी की उपलब्धता अस्तबल में हमेशा रहनी चाहिए। गर्मी के समय में चारा रात के समय भी उपलब्ध रहना चाहिए।

घुड़साल सम्बन्धी

■ घुड़साल गर्मी,सर्दी, वर्षा से बचाव करने में सक्षम व सुरक्षित स्थान पर होना चाहिये।

■ घुड़साल में हवा व रोशनी पर्याप्त होनी चाहिये।

■ बल्ब व रोशनी के साधन घुड़साल में उचित ऊंचाई पर होने चाहिये जोकि अश्वों की पहुंच से बाहर हो।

■ अगर फर्श पक्का हो तो ये रपटने वाला न होकर खुरदरा होना चाहिये। फर्श की ढलान इस प्रकार की हो कि पानी न रूके और सफाई सुचारू रूप से हो सके।

■ अगर फर्श कच्चा हो तो ऊपर की मिट्टी को साल में एक दो बार बदल देना चाहिये।

■ धूल रहित सूखी घास व पुआल को बिछौने के रूप में प्रयोग करें। इससे घोड़ें को आराम मिलता है।, यह पेशाब सोख लेता है व लीद हटाना भी आसान हो जाता है।

■ गीले एवं गंदे बिछौने को तुरन्त बदलना व घुड़साल की सफाई की पूर्ण व्यवस्था अति आवश्यक है।

■ स्वच्छ पानी व चारा/दाना खिलाने की समुचित व्यवस्था हो।

■ पानी, चारा/दाने की नादों की सफाई निश्चित समय पर होती रहनी चाहिये। घुड़साल अकेले में न हो और न ही इसमें कोई खूंटी, कील या नुकीली वस्तु हो। कोने आदि गोलाई में हो।

स्वस्थ एवं अस्वस्थ अश्वों की पहचान

अश्व पालकों को स्वस्थ एवं अस्वस्थ घोड़ों की पहचान होनी चाहिए। जिससे वह बीमार अश्वों का तुरन्त ईलाज करवा सके और स्वस्थ घोड़ों से उनको अलग कर सके ताकि किसी तरह की संक्रमण स्वस्थ घोड़ों में ना हो पाए। बीमार घोड़ों को हमेशा स्वस्थ घोड़ों से अलग करके उनका उपचार करवाना चाहिए।

टीकाकरण

अश्व पशुओं को समय–2 पर विभिन्न बीमारियों के खिलाफ प्रतिरोधक टीके लगवाने चाहिए जिससे पशुओं को होने वाली बीमारियों से बचाया जा सकें।

सालाना एक बार हिड़काव का टीका लगवाये, सालाना एक बार टीटनस का टीका लगवाये, टर्पिस विषाणु (इ एच वी 1) का टीकाकरण 5 महीने के गर्भकाल पर (यह टीका 60 से 90 दिन के उपरांत दुबारा लगाया जाता है)

गर्भकाल की आखिरी तिमाही

हर्पिस विषाणु (इ एच वी १) का टीकाकरण, ब्याने से 60 दिन पहले लगवाए।

टीटनस का टीका ब्याने से 30–40 दिन पहले देना चाहिए।

देश में अगर कहीं इन्फ्लुएंजा का संक्रमण है तो ब्याने से एक महीने पहले इन्फ्लुएंजा का टीका भी लगवायें।

शिशु अश्व तीन महीने के उम्र होने पर टीटनस, हिड़काव, हर्पिस विषाणु से बचाव के टीके लगवाए, इन बच्चों में प्रथम टीके के एक महीने के बाद दुबारा टिके लगवाएं जिससे रोग निरोधक शक्ति अच्छी तरह से स्थापित हो सके।

अनाथ शिशु की देखरेख

जब शिशु 3–4 महिने के हो जाए तो अनके हैड कालर, मोहर आदि डालना शुरू कर देना चाहिए जिससे उनको इसकी आदत हो जाए और बाद में उनको काबू करने में किसी किस्म की दिक्कत ना आवें।

बच्चे का दूध बंद करना

अश्व शिशुओं को दूध पिलाना 4–6 महिने की उम्र में बंद कर देना चाहिए, जिससे घोड़ी का स्वास्थ्य ठीक रहे और वह अपने आप को अगले बच्चे के लिये तैयार कर सके। दूध बन्द करने के बाद बच्चों को दाने की मात्रा बढ़ा देनी चाहिए जिससे बच्चे के स्वास्थ्य पर कुप्रभाव न पड़े।

□

सन्तुलित आहार द्वारा ऊँटों का वैज्ञानिक पोषण प्रबंधन करें

डॉ. अशोक कुमार नागपाल
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

ऊँटों को स्वस्थ रखने में आहार का बहुत महत्वपूर्ण योगदान है। ऊँट के रख–रखाव तथा पालन पोषण में चारे/दाने का 70 से 80 प्रतिशत खर्चा होता है। इसलिए जरूरी है कि ऊँट को उचित मात्रा तथा गुणवता वाला आहार दें। चारे की गुणवता से अर्थ है कि ऊँट को आहार में, उचित मात्रा में ऊर्जा, प्रोटीन, विटामिन तथा खनिज तत्व उपलब्ध हो। उचित मात्रा से अर्थ है कि उसको भरपेट आहार मिले। कम मात्रा तथा निम्न गुणवता वाले आहार से ऊँट जहां कमजोर और देर से वयस्क होगा, वहीं ज्यादा मात्रा तथा गुणवता वाले आहार से शरीर में ज्यादा वसा जमा होगी। उचित मात्रा तथा गुणवता वाले आहार से ऊँट का शरीर सही, स्वस्थ रहेगा और अच्छा उत्पादन देगा। ऊँट पोषण का ज्ञान ऊँटों से, चारा अपव्यय से बचने के अलावा, उनके उचित और संतुलित भोजन में इष्टतम उत्पादन लेने में मदद करता है। ऊँट पोषण का ज्ञान उनके शरीर की स्थिति के हिसाब से उपलब्ध भोजन और चारा संसाधनों से उनके पोषक तत्व आवश्यकताओं को पूरा करने से संबंधित है। ऊँट के पोषक तत्वों की आवश्यकता उनकी उम्र, शरीर के वजन और शरीर के विकास, गर्भावस्था, स्तनपान, प्रजनन, कार्य प्रकार की स्थिति से निर्धारित होते हैं (तालिका–1)

टोरडियों का आहार

टोरडियों को दिए जाने वाला आहार बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसी के आधार पर ऊँट की भावी उत्पादन क्षमता निर्भर करती है। नवजात टोरडियों को जन्म लेने के 24 घंटों के भीतर खींस (ऊँटनी का पहला दूध) पिलाएं जिसमें पोषक तत्वों की भरपूर मात्रा के साथ बीमारी रोधक तत्व होते हैं। 10–15 दिनों बाद टोरडियों को ऊँटनी के साथ चरने के लिए हरा चारा दें जिससे उसके पेट में उपस्थित रूमन का समुचित विकास हो। धीरे–2 दूध की मात्रा घटाते जाएं और चारे/दाने की मात्रा बढ़ाते जाएं। हमारे केन्द्र के उष्ट्र पर प्रयोगों में पाया गया है कि टोडियो को दूध तथा मोठ चारे पर रखने से एक साल में टोरडिया 200 किलोग्राम का हो जाता है। अच्छा आहार देने से टोरडियों का देह भार 300 कि.ग्रा. बढ़ सकता है। उष्ट्र पोषण प्रयोगों में देखा गया कि टोरडियों को संतुलित आहार देने से उनका वजन 2 साल की आयु में 400 कि. ग्रा. से अधिक और 3 साल की आयु में 500 कि.ग्रा. से अधिक हो गया। तीन वर्ष की आयु में ऐसे टोरडिए से कार्य लिया जा सकता है और बाजार में इसकी कीमत 25–30,000/– हजार में आसानी से मिल सकती है। उष्ट्र पोषण प्रयोगों से प्राप्त आंकड़ों से पता चलता है कि ऊँट को संतुलित आहार देने से आर्थिक लाभ होता है। टोडिया को 10 % कच्ची प्रोटीन तथा 62 % पचाकता वाले सन्तुलित गोलीदार दाने जिसमें चारे तथा कृषि उत्पादों के 50: 50 अनुपात था, देने पर देह भार वृद्धि 650 ग्राम प्रतिदिन से भी अधिक थी और जल्दी वयस्क हुए। सन्तुलित गोलीदार दाने के भी फायदे फीड ब्लाक से अधिक हैं क्योंकि इसमें चारे दाने बेकार नहीं जाते हैं।

ग्याभिन ऊँटनी

गाएं, भैस, भेड़, बकरी, ऊँट का गर्भकाल अलग–अलग होता है। गर्भ के आखिर समय में भ्रूण का विकास काफी तेजी से होता है। भविष्य में दुग्ध उत्पादन हेतु पोषक तत्वों को शरीर में जमा करने की आवश्यकता होती है ऐसी स्थिति में ग्याभिन पशुओं को प्रोटीन और प्रतिशत कुल पाचक तत्वों वाले संतुलित आहार देना ठीक रहता है। ऊँट का गर्भकाल 389 दिन का है। अनुसंधान में पाया गया कि आखिरी चार में माह भ्रूण के सही विकास हेतु ऊँटनी को 1.6 प्रतिशत शुष्क पदार्थ, 6.0 प्रतिशत पचनीय कच्ची प्रोटीन, 50 प्रतिशत कुल पाचक तत्व वाला आहार देने से ऊँटनी के देहभार में 1.

0 किलोग्राम/दिन तथा 42 किलोग्राम का टोरडिया पैदा हुआ।

दुधारू ऊँटनी

ऊँटनी सामान्यतः दिसम्बर से मार्च तक ब्याती है और एक अच्छी ऊँटनी ठीक आहार देने से 8–10 लीटर दूध 10 माह तक आसानी से दे देती है। दुधारू ऊँटनियों के पोषण प्रबन्ध में तीन बातों को ध्यान में रखना चाहिए, देहभार, दुग्ध उत्पादन तथा आहार। अनुरक्षण स्तर पर दुधारू ऊँटनी को अनुमानतः 1.25 से 1.50 किलोग्राम षुश्क आहार प्रति 100 किलोग्राम देह भार की आवश्यकता होती है जो कि गाय, भैंस, भेड़ एवं बकरी की अपेक्षा कम है। पहली तथा दूसरी ब्यांत में देहभार वृद्धि हेतु 10 से 20 प्रतिशत अतिरिक्त अनुरक्षण पोषण की आवश्यकता होती है। दुधारू ऊँटनिया को जंगल, चरागाहों में चराने हेतु भेजने से अतिरिक्त ऊर्जा व्यय होने पर आवश्यकतानुसार 20 प्रतिशत अधिक अनुरक्षण पोषण देना चाहिए। दुधारू ऊँटनियों को दूध की वसा मात्रा, अन्य तत्व तथा मात्रा के मुताबिक पोषण देना आवश्यक है। इसके दूध में वसा, प्रोटीन, लेक्टोज तथा खनिज तत्व मौजूद रहते हैं जिनकी पूर्ति आहार से होनी चाहिए। दुधारू पशु आहार के प्रोटीन को बहुत क्षमता से दूध प्रोटीन में परिवर्तित कर लेते हैं। दूध की प्रोटीन की आपूर्ति को 1.25 गुणा आहार प्रोटीन द्वारा पूर्ण किया जा सकता है। दूधारू पशु आहार की शर्करा को, दूध की वसा में बदलने में सक्षम हैं पर उनके लिए आहार की वसा को दूध वसा में परिवर्तित करना आसान है। इसलिए आहार में हरा चारा, सांद्र मिश्रण द्वारा 4 प्रतिशत वसा की मात्रा रखना ठीक है। दुधारू ऊँटनियां प्रारम्भिक अवस्था में अधिक दूध उत्पादन से तनाव में रहती हैं क्योंकि आहार द्वारा उतनी पोषक तत्वों की आपूर्ति नहीं होती और शरीर में उपलब्ध ऊर्जा, प्रोटीन, खनिज तत्व, विटामिन का दूध में स्राव होने से उनके देहभार में कमी आ जाती है। दुधारू ऊँटनियों में पोशक तत्व बढ़ाकर शुष्क पदार्थ ग्रहण को कम से कम 2.25 किलोग्राम प्रति 100 किलोग्राम देहभार होना चाहिए ताकि देहभार में गिरावट न हो। अनुसंधान बताते हैं कि ऊँटनी का दूध अच्छे पाचक पोषक तत्वों वाला तथा बीमारी रोधक भी है इससे बाजार में इसकी काफी मांग है । दुधारू ऊँटनी का आहर उसके दूध उत्पादन आधार पर देना ठीक है। हमारे केन्द्र के शोध ा में पाया गया कि सिर्फ चारा देने से ऊँटनी में 305 दिनों में 5.5 लीटर/प्रतिदिन दूध दिया साथ में उसके देहभार में भी कमी देखी गई। दूसरे प्रयोग में देखा गया कि ऊँटनी ने संतुलित आहार देने पर 10.4 लीटर दूध ा/दिन दिया जबकि मोठ चारा देने पर 7.2 लीटर/दिन दूध था। संतुलित आहार देने से दूध में प्रोटीन लेक्टोज की मात्रा भी बढ़ी और उसके देहभार में भी काफी वृद्धि हुई। संतुलित आहार देने से अधिक मात्रा में प्राप्त दूध वाली आय में बढ़ोतरी पाई गयी। एक 500 किलोग्राम देहभार दुधारू ऊँटनी को 2.25 प्रतिशत शुष्क पदार्थ, 6.0 प्रतिशत पचनीय कच्ची प्रोटीन, 60.0 प्रतिशत कुल पाचक तत्व वाला आहार की प्रतिदिन की आवश्यकता होती है ताकि देहभार में गिरावट न हो।

नर ऊँट का आहार

सर्दियों में नर ऊँट मस्ती यानी **'झूट'** में आता है। यही इसका प्रजनन काल है। इस मौसम में नर ऊँट खाना–पीना छोड़ देता है जिससे इसके वजन में 15–20 प्रतिशत तक की गिरावट आ जाती है। उसकी प्रजनन शक्ति व देहभार को बनाए रखने के लिए नर ऊँटों की ऐसी अवस्था में चारे के साथ प्रतिदिन 500 ग्राम गुड़ व 250 ग्राम मूंगफली तेल दें या 2–3 कि.ग्राम रातिब मिश्रण दें। राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र ने नर ऊँटों के लिए ग्वार फलगटी, मूंगफली चारे, गुड़ मूंगफली तेल, ग्वार चूरी, नमक, खनिज मिश्रण से स्वादिष्ट और पौष्टिक बिस्कुट/ईंटें तैयार की है।

कार्य उत्पादन

सदियों से ऊँट अपने मालिक के लिए सवारी, कृषि कार्यों में सहायता तथा बोझा ढोने के कार्य करता आया है जिससे धन अर्जित होने से किसाने अपने परिवार का पालन पोषण करता है। केन्द्र द्वारा की गई शोध में देखा है कि जब पानी की टंकिया ढोने वाले ऊँटों को सिर्फ ग्वार फलगटी या मोठचारा या मूंगफली चारा दिया गया तो ऊँटों को जल्दी थकान हुई और पानी की कम टंकियां ढोने से कम आय हुई जब

ग्वारफलगटी, मूंगफली चारे, शीरे, ग्वार चूरी, चापड़, खनिज मिश्रण तथा नमक से बने संतुलित आहार के बिस्कुट दिए तो ऊँटों की सेहत, कार्यक्षमता में सुधार हुआ। ऊँटों ने ज्यादा पानी की टंकिया ढोई और आय भी बढ़ी। कहने का तात्पर्य है कि ऊँट से कार्य लेने पर उसकी सेहत तथा कार्यक्षमता बनाए रखने के लिए संतुलित आहार का प्रयोग करें।

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर में ऊँट की उपयोगिता बढ़ाने हेतु परियोजनाएं चल रही है ताकि ऊँट अधिक से अधिक अपने मालिक के लिए

लाभकारी हो सके। 500 किलोग्राम देहभार वाले ऊँट से कार्य लेने पर उसे उसकी सेहत तथा कार्य क्षमता बनाए रखने के लिए ऊँटों को 1.59 प्रतिशत शुष्क पदार्थ, 4. 67 प्रतिशत पचनीय कच्ची प्रोटीन, 60.0 प्रतिशत कुल पाचक तत्व वाला आहार संतुलित आहार का प्रयोग करें जो उसकी सेहत तथा 6 घंटे कार्य हेतु आवश्यक है।

यदि हम ऊँटों के चारे और दाने के पोषण मूल्य देखें तो पाते हैं कि सभी का पोषण मूल्य अलग–अलग है और कोई भी चारा या दाना ऊँट की ऊर्जा, प्रोटीन और खनिजों की आवश्कताओं को पूर्ण करने में सक्षम नहीं है और अकेले चारे या दाने से ऊँट आहार असंतुलित पोषण की ओर जाता है। सर्वश्रेष्ठ आहार प्रबंधन वही है जो ऊँट की सभी ऊर्जा, प्रोटीन और खनिज तत्वों की पूर्ति करे और इसे हम सन्तुलित फीड ब्लॉक या फीड छर्रों के रूप में कर सकते हैं। सन्तुलित फीड ब्लॉक या फीड छर्रों में उपलब्ध चारे और दाने को उचित अनुपात में मिश्रित किया जाता है जिससे ऊँटों को सभी पोषक तत्व उचित मात्रा और अनुपात में मिलने से उसका शरीर स्वस्थ रहता है और अपने मालिक के सभी काम में सहायता करता है।

ऊँट के चारे

रेगिस्तान में कम वर्षा होने और कम पानी होने की वजह से ऊँट को हमेशा चारे की उपलब्धता की समस्या रही है पर ऊँट अपनी अद्भुत पाचन प्रणाली के कारण रेगिस्तान में पैदा होने वाली कई प्रकार की घास, झाड़ियों, पेड़ों को खाकर अपना जीवन बचाए रखता है। ग्रामीण इलाकों में ऊँट खेतों, चरागाहों, बंजर जमीन तथा जंगलों में घूम कर कई प्रकार के पेड़–पौधों पर निर्वाह करता है। वर्षा ऋतु में ऊँट के लिए काफी घास, पौधे, झाड़िया पैदा हो जाती है। उसे घर में ज्यादा चारा/दाना नहीं देना पड़ता, परन्तु वर्षा ऋतु के थोड़े समय पश्चात् ही घास पौधे, झाड़ियां सूख जाते हैं और उसे अतिरिक्त चारे की आवश्यकता पड़ती है जो किसान ऊँटों से चारा, बजरी, ईटें, पानी की टंकिया कृषि उत्पाद इत्यादि कार्य लेते हैं वे अपने ऊँटों को मोठ, ग्वार मूँगफली, चने की तुडी/खार देते हैं। विभिन्न

पेड़ और झाड़ियां, पालतु पशुओं के प्राकृतिक चारागाह आहार के रूप में प्रयुक्त होता है, जैसे अरडु,, नीम एवं खेजड़ी, हमारे पूरे देश में पाए जाते है। पत्तियां जो टहनियों की छँटनी के दौरान प्राप्त होती है, विभिन्न राज्यों में पालतू पशुओं के चारे के रूप में प्रयुक्त की जाती है। पत्तियों की रासायनिक संगठन, वातावरण एवं मौसम पर निर्भर करता है। इसमें औसतन 15 प्रतिशत कच्ची प्रोटीन, सामान्यतया कैल्शियम की मात्रा अधिक लेकिन फॉस्फोरस की मात्रा कम पायी जाती है। ऊँट के कुछ स्थानीय उपलब्ध चारे का रासायनिक संगठन में यह पाया गया कि ग्वार फलगटी, प्रोटीन (7.1 प्रतिशत) का निम्न स्रोत है तथा मोठ चारा, प्रोटीन का बढ़िया (10.79 प्रतिशत) स्रोत है। पेड़ों की पत्तियां/चोकर में प्रोटीन कुछ अधिक प्रतिशत में पाया जाता है, जो कि 14–18 प्रतिशत कच्ची प्रोटीन है। शीरा/गुड़ एवं चावल की कणी, कार्बोहाईड्रेट के अच्छे स्रोत है जबकि ग्वार चूरी, प्रोटीन में समृद्ध होती है जो कि 41 प्रतिशत

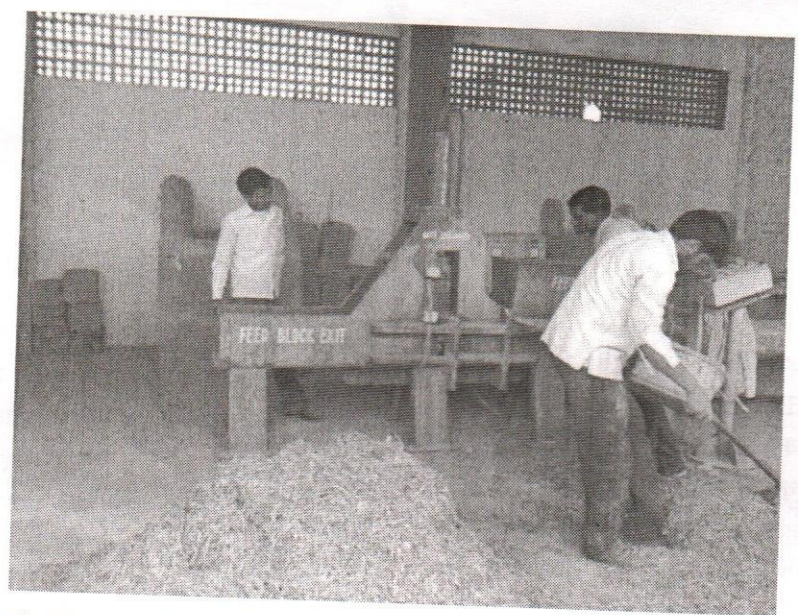

है। इन चारो को काम में लेते हुए ऊँटों हेतु मिश्रित एवं सन्तुलित आहार का एक आदर्श मिश्रण तैयार किया जा सकता है। राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर में ग्वार फलगटी, मोठ चारा, मूँगफली चारा, चने की खार, खेजड़ी, अरडु, नीम, बुई एवं गेहूँ भूसा के उचित उपयोग करने हेतु विभिन्न चारों को मिश्रित रूप में प्रयुक्त किया गया। चारा स्रोतों में जैसे चने की खार, गेंहूँ, भूसा एवं बुई को ऊँट सामान्यतया पसन्द नहीं करता है। चारे की लागत को घटाने हेतु इन्हें पूर्ण आहार में समाविष्ट किया जा सकता है। ये मिश्रित अथवा संतुलित आहार के रूप में स्थानीय उपलब्ध चारा को कृषि उद्योगीय सह–उत्पादों के साथ मिश्रित करके पशुओं की उत्पादकता में वृद्धि करने हेतु दिये जा सकते हैं।

सन्तुलित आहार

सन्तुलित आहार बनाने से न सिर्फ यह पता चलता है कि सारे चारे एकसारता से मिश्रित हो रहे हैं। राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर में ऊँटो की खाने– पीने की आदतों को, स्थानीय चारे के स्रोतों को तथा भोज्य पदार्थों की कीमत को ध्यान में रखते हुए सन्तुलित आहार के कई संयोजन बनाए गए तथा उनकी पोषकता व ऊँटों की उत्पादकता बढ़ाने की क्षमता को देखा गया। सन्तुलित आहार बनाने के लिए ग्वार फलगटी तथा चने की खार को आधारभूत चारे के तौर पर लिया गया जिसमें मूंगफली चारा/मोठ चारा/हरी पत्तियां (खेजड़ी, अरडू, नीम, बूई) को हरे मोटे चारे की तरह तथा सान्द्र का इस्तेमाल किया गया है ताकि आधारभूत चारे की पोषकता बढ़ाई जा सके।

सन्तुलित आहार ऊँटों के स्वस्थ, बेहतर उत्पादन और कुपोषण रोकने का एकमात्र विकल्प है औ सन्तुलित

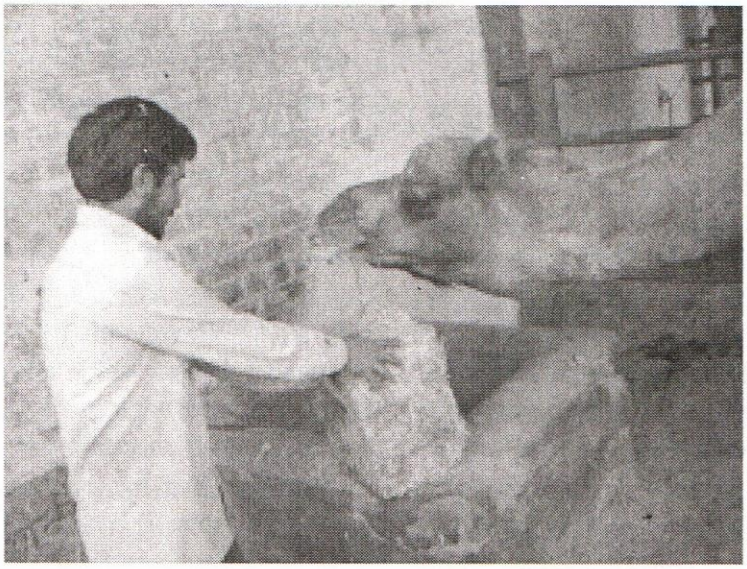

आहार के बिस्कुट ऊँटों के लिए एक आधुनिक तकनीक भी है। इसके निम्नलिखित लाभ है :–

■ इससे रूमन किण्वीकरण सही रहती है जो कि चारे की उपयोगिता तथा उष्ट्र उत्पादन बढ़ाती है।

■ सन्तुलित आहार को खुले चारे के रुप में देने से बेशक हम अपनी तरफ से सभी तत्व संतुलित मात्रा तथा अनुपात में देते हैं पर क्योंकि ऊँट चयन करके खाने में माहिर होने से पसंद का चारा खाता है तथा नापसंद छोड़ देता है। मगर इस सन्तुलित आहार को भेली या ईंटों के रुप में देने से ऊँटों द्वारा पसंद का चारा खाना तथा नापसंद को छोड़ देना सम्भव नहीं होता।

■ ये ईंटें स्थान भी कम घेरती हैं।

■ तथा इनके परिवहन में भी कम खर्च आता है।

■ ईंटें चारे एवं दाने का परस्पर मिश्रण हैं। इनमें ऊर्जा, प्रोटीन की सुलभता से उष्ट्र आहार के प्रत्येक कण की उपयोगिता में वृद्धि होती है।

■ 5 किलो की 2 ईंटें एक ऊँट का एक दिन का सम्पूर्ण आहार है। इनको तोड़ कर खिलाने की जरुरत नहीं है।

तालिका 1 ऊँट हेतु दैनिक पौषक तत्वों की आवश्यकता

देह भार किग्रा	शुष्क पदार्थ किग्रा	पचनीय कच्ची प्रोटीन	मेटाबोलिक ऊर्जा मेगा कैलोरी	कैल्सियम ग्रा.	फोस्फोरस ग्रा.
ऊँट के अनुरक्षण हेतु					
500	6.00	232.62	10.99	24.00	12.00
ग्याभिन ऊँटनी					
500	8.00	456.00	15.30	36.00	24.00
दुधारू ऊँटनी (8 लीटर प्रतिदिन)					
500	11.25	742.50	24.20	45.00	28.13
नर ऊँटों हेतु					
500	5.29	317.21	11.42	21.15	15.86
बोझ ढ़ोने वाले ऊँट (6 घंटे प्रतिदिन)					
500	7.93	370.08	17.13	31.72	23.79
बछड़ों हेतु / 350 ग्राम					
100	2.21	158.11	5.12	11.07	6.64
300	5.05	360.42	11.68	25.23	15.14
500	7.40	528.69	17.13	37.01	22.20

शुष्क क्षेत्रों के पशु उत्पादन सुधार में आवास व्यवस्था की भूमिका

डॉ.ए.के.पटेल

केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, मरू क्षेत्रीय परिसर, बीकानेर

पशुओं की विभिन्न प्रजातियाँ घरेलूकरण से पहले जंगलों व चरागाहों में जंगली रूप में रहते थे। विभिन्न पशुओं का घरेलूकरण मानव के हस्तक्षेप से पशुधन को मानवता के लिए उपयोगी बनाना सम्भव हुआ। यद्यपि शुष्क क्षेत्र में पशुधन की नस्लें रेगिस्तान की आपदाओं के अनुरूप हैं, फिर भी इस क्षेत्र की जलवायु पशु उत्पादन क्षमता को प्रभावित किए बिना नहीं रहती है। प्रचण्ड जलवायु पशुधन की उत्पादकता पर विकराल प्रभाव डाल सकता है। विभिन्न अध्ययनों से यह तथ्य सामने आया है कि पशु आवास व्यवस्था से विपरीत प्रभावों को कम करके पशुधन की उपलब्धियों में सुधार सम्भव है। आवास का मुख्य उद्देश्य पशु को आरामदायक वातावरण व स्वच्छ रखरखाव प्रदान करना है जिससे पशु अपने अनुवांशिकी क्षमतानुसार अधिकतम उत्पादन कर सके। हालाँकि, भारत के अधिकतर शुष्क क्षेत्रों में छोटे पशुओं को आवास प्रदान नहीं किया जाता है, जबकि बड़े पशुओं के लिए छप्पर वाला आवास साधारण बात है।

शुष्क क्षेत्र में पशु आवास प्रबन्धन की वर्तमान स्थिति

शुष्क क्षेत्र के पशु आवास व्यवस्था पर एक सर्वेक्षणानुसार पश्चिमी राजस्थान में 80 प्रतिशत पशुपालक गाय–भैंसों को छप्पर या सरकडों की आवास प्रदान करते हैं जबकि केवल 10 प्रतिशत भेड़–बकरियों को छप्पर में रखते हैं। शेष पशुपालक अपनी भेड़–बकरियों को खुले बाड़े में रखते हैं। ऐसा बाड़ा बनाने के लिए क्षेत्र में उगने वाली कंटीली झाडियों का प्रयोग किया जाता है। यद्यपि अधिकतर पशुपालक अपने पशुओं को कम से कम आवास व्यवस्था प्रदान करते हैं फिर भी सामान्य वातावरण के दौरान वे अपने पशुओं को पशुशाला के बाहर बाँधना अधिक पसन्द करते हैं हाँलाकि खराब मौसम के दौरान जैसे कि बरसात, बहुत अधिक गर्मी या सर्दी व रात के समय ठण्ड के मौसम में पशुओं को अधिकतर पशुशाला के अन्दर ही रखा जाता है।

पशु आवास प्रायः पशुपालक के घर के पास ही बनाया जाता है जिससे कि पशुओं की देखभाल आसानी से की जा सके। कई बार जब पशुओं की संख्या थोड़ी होती है तब पशुपालक अपने ही घर के किसी हिस्से में पशुओं को भी रख लेता है। लगभग 80 प्रतिशत पशु आवास आयताकार व 20 प्रतिशत गोलाकृति में पाए गए। खुले बाड़े की आकृति अधिकतर गोल भी पायी गयी है जो कि कंटीली झाड़ियों से बनाई गई थी लेकिन कहीं–कहीं पर इस उद्देश्य के लिए पत्थर की पट्टियाँ भी प्रयोग में लायी गई थी। आयताकार पशुशाला की औसतन आकार 12'X10'X7 व गोलाकार के लिए 5 से 8 फीट व्यास पाया गया।

सर्वेक्षण क्षेत्र में अधिकतर आवास पूर्व–पश्चिम दिशा में पाए गए लेकिन कुछ जगहों पर पशु आवास उत्तर–दक्षिण दिशा में बनाए गए थे जिससे कि सर्दी के मौसम में उत्तर दिशा से आने वाली ठण्डी हवाओं से पशुओं को बचाया जा सके। किसी भी पशुशाला में पक्के फर्श का निर्माण नहीं मिला, सभी में कच्चा फर्श ही इस्तेमाल किया गया था। आवास में गीलेपन को रोकने के लिए फर्श में खुले क्षेत्र की ओर ढलान दिया गया था। सभी पशु गृह हवादार बनाए गए थे क्योंकि दीवारों की ऊँचाई छत से काफी कम रखी गई थी। छप्पर वाले पशु आवासों का तापमान आवास के बाहर की तुलना में 2 से 4 डिग्री सेल्शियस कम पाया गया।

छप्पर वाले आवासों के निर्माण में विभिन्न प्रकार की सामग्री का इस्तेमाल किया गया था जिसमें मुख्यतः शाखाएँ, टहनियाँ, झाड़ियाँ आदि शामिल थे। जोधपुर व नागौर जिलों में ज्यादात्तर खीम्प व शणियों से बनाए गए थे जबकि बाड़मेर जिले में बुई का प्रयोग मुख्य रूप से किया गया था। पशुशाला की तरफ वाली दीवारें आकड़ा, बोरडी व बबूल की टहनियों से बनाई गई थी। छप्पर की मरम्मत का कार्य अधिकतर साल में एक या दो बार ही किया जाता है, प्रायः सर्दी व बरसात के मौसम में।

सभी पशुशालाओं में नॉद रखे जाते हैं लेकिन पानी के कुंड केवल 10 प्रतिशत में ही प्ए गए क्योंकि ज्यादातर पशुओं को पानी पिलाने के लिए गाँव के जलाश्यों पर ले जाया जाता है। खाने के प्रयोग के लिए

नॉद अधिकतर पत्थर पट्टिकाओं की बनी होती है, जबकि कभी–कभी लोहे के कढ़ाहे, लकड़ी के बॉक्स व पुराने टायर आदि भी काम में लाए जाते हैं। खाद्य नॉद का औसतन आकार 10'X1.5'X1.0' पाया गया। पशु आवास में गोमूत्र व मल की निकास प्रणाली नहीं अपनाई गयी क्योंकि फर्श पक्का नहींय बनाया गया था। शुष्क क्षेत्रों में कम आर्द्रता के कारण पशु के वर्ज्य पदार्थ सीधे ही कच्चे फर्श द्वारा सोख लिए जाते हैं।

पशु आहार के भंडारण के लिए विशेष आकृतियाँ बनाना इस क्षेत्र में साधारण–सी बात है जो कि दाना व चारे की अधिक मूल्यों के कारण हो सकती है। इस क्षेत्र के पशुपालक, आहार को लम्बे समय तक सुरक्षित रखने के लिए विशेष ध्यान देते हैं जिससे कि हरे चारे की कमी के समय व अकाल की स्थिति में काम आ सके(अकाल जो कि इस की एक आम विशिष्टता है) लगभग 80 प्रतिशत पशुपालकों ने आहार भंडारण के लिए पक्के व अर्ध–पक्के ढाँचे तैयार किए जबकि 20 प्रतिशत किसानों ने पशु आहार कच्चे व परम्परागत ढाँचों में भंडारण किया। पशुधन के लिए कोई भी सुव्यवस्थित आवास नहीं मिला जिसमें विशेष आने–जाने का रास्ता बनाया गया हो। पशुपालक आवास की अहम भूमिका से अनभिज्ञ हैं जो पशु उत्पादकता बढ़ाने में बहुत सहायक हैं।

वातावरण बलाघात का पशु उत्पादकता पर प्रभाव

शुष्क क्षेत्र की एक मुख्य विशेषता है रूखा वातावरण, जो कि कम व अस्थिर वर्षा, निम्न गुणवत्ता की मिट्टी, तापक्रम में अधिकाधिक भिन्नता, अधिक वायुवेग व अधिक वाष्पीकरण आदि के कारण होता है। इस तरह के क्षेत्र अधिकतर गोचर के लिए उपयुक्त होते हैं तथा इस क्षेत्र के पशुधन को प्रायः चरागाहों में व्यापक चराई पर पाला जाता है जहाँ इन पशुओं को चराई के दौरान किसी प्रकार की छाया आदि प्रदान नहीं की जाती है। लेकिन भीषण गर्मी के समय ये पशु वृक्षों की छाया का आश्रय लेते हैं जबकि अत्यधिक ठण्ड के समय रात को पशु रेत के टीले व झाड़ियों का सहारा लेते हैं।

पशु उष्ण रक्त प्राणी हैं जो अपने शरीर का तापमान दक्षतापूर्ण कार्य करने के लिए बनाए रखने में सक्षमह[ै]। तापशून्य क्षेत्र के अलावा पशु पर बलाघात हो जाता है जिसके कारण माँस,दूध व अण्डे प्रति यूनिट खाद्य आहार के रूप में उत्पादकता काफी कम हो जाती है। बलाघात पशु की जैविकी पर गहरा असर करता है जिसके फसस्वरूप उत्पादकता कम हो जाती है। बलाघात पशु के अंदरूनी प्रणाली, प्रतिरक्षित व संवेदी तन्त्र आदि को प्रभावित करता है। ये सभी रूपांतरण पशु के द्वारा किए गए प्रयासों का हिस्सा है जो वो परिवर्तनीय वातावरण में अपने शरीर का तापमान बनाए रखने के लिए करता है।

प्रजनक योग्यता

उष्ण बलाघात अधिक दुधारू पशुओं के उत्पादन व प्रजनन दोनों को प्रभावित करता है। गर्मी के मौसम में गर्भधारण दर 5 से 20 प्रतिशत तक कम हो जाती है क्योंकि पशु के गर्मी/ताव में आने के लक्षण बहुत क्षीण होते हैं जिसके कारण उसरता भी कम हो जाती है। होलस्टियन गायों को जब 21 दिनों के लिए पंखे की हवा में रखा गया तो नियमित गर्भकाल के लक्षणों में 71. 4 प्रतिशत सुधार पाया गया जबकि साधारण अवस्था में केवल 33 प्रतिशत पशुओं में ये लक्षण पाए गए।

भैंस का प्रजनन व्यवहार जलवायु की स्थिति से बहुत अधिक प्रभावित होता है। शोध में यह पाया गया है कि भैंसों में अधिकतम गर्भधारण सर्दी के मौसम में (अक्टूबर से जनवरी) व सबसे कम गर्म व शुष्क (मई माह से अप्रैल) ऋतु में पाया गया है। दिनों की अवधि गर्भधारण दर को प्रभावित नहीं करती है।

दुग्ध उत्पादन उपलब्धि

सभी स्तनपाइयों में ऋतु परिवर्तन के साथ दूध उत्पादन में बदलाव आता है। दूध उत्पादन के लिए अनुकूलतम तापमान अधिकतर प्रजाति, नस्ल व अत्यधिक गर्मी व सर्दी की सहनशीलता पर निर्भर करता है। विदेशी नस्ल की गायों का उत्पादन 21 से 27 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान पर कम होना शुरू कर देता है जबकि देशी गायों में 34 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान के बाद दूध उत्पादन कम होने लगता है। भारत वर्ष के उत्तर–पश्चिमी भाग की शंकर नस्ल की गायों की उत्पादकता पर गर्म शुष्क जलवायु का विशेष प्रभाव नहीं पड़ा जबकि गर्मतर सापेक्ष जलवायु व देश के पूर्वी भागों में जहां भारी वर्षा होती है, ऐसे पशुओं की उत्पादकता काफी कम पाई गई।

कुछ विशेष शोधकर्ता बताते हैं कि सापेक्ष आर्द्रता व तापमान की बढ़ोतरी के साथ पशुओं का प्रतिदिन दुग्ध उत्पादन घटता है। दूध उत्पादन में कुछ परिवर्तन का 62.75 प्रतिशत सापेक्ष आर्द्रता व तापमान के कारण होता है। शुष्क क्षेत्र को धारपारकर नस्ल की गायों के दूध में वसा प्रतिशत गर्म शुष्क व गर्म आर्द्र

दोनों जलवायु में कम पाई गई। दूसरे देशों में भी होलेस्टियन गायों में उष्ण बलाघात के कारण दुग्ध उत्पादन में काफी कमी पाई गई। इसके अतिरिक्त वसा व प्रोटीन मात्रा भी ग्रीष्म ऋतु के दौरान कम पाए गए।

शरीर वृद्धि उपलब्धि

आर्थिक लाभ के लिए रखे गए सभी पालतू पशुओं में शरीर वृद्धि एक मुख्य पहलू है। उष्ण जलवायु बलाघात विशेषकर पशुओं के ब्याने के समय गाय व भेड़ों के बच्चों के जन्म के समय वजन कम करता है। जन्म के वजन में कमी अनावरण अवधि के समानुपाती पाया गया है। यह सत्यापित तथ्य है कि भ्रूण वृद्धि उष्ण बलाघात से प्रभावित होता है, विशेषकर उच्च तापमान पर सम्भवतः मातृत्व रक्त के प्रभाव द्वारा जो भ्रूणको पूर्ति करता है। शरीर वृद्धि पर सदी का प्रभाव तुलनात्मक कम होता है जो कि विशेष आहार द्वारा काबू किया जा सकता है। शरीर वृद्धि पर सर्दी का प्रभाव तुलनात्मक कम होता है जो कि विशेष आहार द्वारा काबू किया जा सकता है। उष्ण बलाघात के कारण छोटे पशुओं में शरीराकार छोटा रह जाता है जिसका प्रभाव नस्ल, आयु, वसापन, आहार व सापेक्ष आर्द्रतानुसार पड़ता है। यूरोपीयन गाय की नस्ल की लगातार अधिक तापमान पर रखने से शरीर वृद्धि पर ऐसा प्रभाव काफी कम पाया गया है।

जलवायु बलाघात को आवास प्रबंधन द्वारा कम करना

छाया अक्सर बंदनुमा मकानों में तापमान को कम करके पशु के शरीर की बाहरी सतह व श्वसन तन्त्र द्वारा वाष्पन को बढ़ाती है। वृक्ष छाया सबसे अधिक प्रभावशाली होती है क्योंकि वृक्ष सूर्य की किरणों से बचाव करते हैं व पत्तियों पर नमी की वाष्पन द्वारा ठण्डक प्रदान करते हैं। हांलाकि शुष्क क्षेत्रों में कई बार पशुओं को छाया प्रदान कराने के लिए वृक्ष उपलब्ध नहीं होते हैं। सूखा घास व भूसा अधिक प्रभावी कृत्रिम छायादार पदार्थ है। भीष्ण गर्मी के दौरान भेड़–बकरियों को छाया प्रदान करके उन पर उष्ण भार कम किया जा सकता है व इसके विपरीत प्रभावों से बचा जा सकता है। अध्ययन में यह पाया गया है कि जब भेड़ों को छाया प्रदान करते हैं तो उनमें उत्तम वृद्धि दर, आहार परिवर्तन क्षमता व उसरता में सुधार होता है तथा शरीर तंत्रीय क्रियाएं भी कम पाई गई हैं।

इसके अलावा शुष्क क्षेत्र में हवा का अधिक तापमान व अत्यंत ठण्डी हवा भी पशुओं की उत्पादकता को प्रभावित करने वाले मुख्य अवयव हैं। इन सर्द हवाओं का उग्र प्रभाव उचित आवास व्यवस्था द्वारा काफी हद तक कम किया जा सकता है।

विभिन्न आवास प्रणालियों में सूक्ष्म वातावरण

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर के पशु प्रबन्ध विभाग में तीन प्रकार के आवासों (खुला आवास, छप्पर प्रणाली व पक्का आवास) के सूक्ष्म वातावरण अध्ययन किए गए (तालिका 1)।

न्यूनतम तापमान दोनों आवासों (खुला व छप्पर प्रणाली) में कम पाया गया जबकि अधिकतम तापमान पक्के आवास में कम दर्ज किया गया। सापेक्ष आर्द्रता पक्के आवास में अधिक पाई गई जो कि घर के अन्दर हवा के कम बहाव के कारण हो सकता है। अतः सारांश यह है कि दो आवासों (खुला आवास व छप्पर प्रणाली) का सूक्ष्म वातावरण इस क्षेत्र में ज्यादा भिन्न नहीं है जबकि पक्के आवास प्रणाली का सूक्ष्म वातावरण गर्मी व सर्दी के समय एकदम भिन्न पाया गया। अध्ययन में यह भी पाया गया है कि पक्का आवास बकरियों को गर्मी व सर्दी की प्रचण्डता से बचा सकता है। जबकि शेष दोनों आवास (खुला आवास व छप्पर प्रणाली), गर्मी, सर्दी, बरसात व पतझड़ के मौसम में भी आरामदायक रहते हैं। एक तथ्य यह भी सामने आया है कि पक्का आवास पशुओं को गर्मी व सर्दी की उग्रता से बचाने में सक्षम है।

मारवाड़ी बकरियों का विभिन्न आवासीय प्रणालियों में उपलब्धता का आंकलन

परम्परागत व उन्नत पशु आवास प्रणालियों का पशु की उपलब्धता पर प्रभाव अध्ययन करने हेतु 18 वयस्क मारवाड़ी बकरियों का चयन किया गया। इन बकरियों को बराबर संख्यां में बांटकर तीन प्रकार के पशु आवासों प्रणालियों (खुला आवास, छप्पर व पक्का आवास प्रणाली) में रखा गया, शेष सभी प्रबन्धन व्यवस्थाएं एक समान रखी गई।

शरीरतन्त्रीय प्रतिक्रियाँ

बकरियों के शरीर तापमान, श्वास दर व नब्ज दर दिन–रात के समय दर्ज किए गए, सभी ऋतुओं व आवास प्रणालियों के तहत भिन्नता पायी गई। ये बकरियाँ 4 से 5 घण्टों के लिए चरागाह में चरने के लिए भेजी गई जहाँ इन पर सूर्य की किरणों का सीधा प्रभाव पड़ा। इन्हीं घटकों के कारण इन पशुओं की शरीर तन्त्रीय प्रतिक्रिया दोपहर बाद काफी बढ़ी हुई दर्ज की गई। मारवाड़ी बकरी का सर्दी ऋतु में भी

दोपहर बाद शरीर का तापमान अन्य दो ऋतुओं की तुलना में अधिक पाया गया जिससे यह संकेत मिलता है कि मारवाड़ी बकरी का रंग काला होने के कारण ऋतु में अधिक गर्मी अवशोषित करके शरीर को गर्म रखते हैं।

आवास प्रणाली का सुबह के समय पशुओं के तापमान पर कोई विशेष प्रभाव नहीं देखा गया। जबकि दोपहर बाद पशुओं का तापमान खुले आवास में सभी ऋतुओं में अधिक दर्ज किया गया। इसका मुख्य कारण यह है कि सुबह के समय सभी आवासों का सूक्ष्म व दीर्घ वातावरण लगभग बराबर रहते हैं लेकिन दोपहर बाद छप्पर व पक्के आवास का सूक्ष्म वातावरण खुले आवास की तुलना में आरामदायक हो जाता है क्योंकि बंदनुमा आवास में पूरी तरह छाया मिलती है।

दुग्ध उत्पादन उपलब्धि

मारवाड़ी बकरियों का दुग्धकाल सितम्बर–अक्टूबर से शुरू हुआ व अप्रैल माह तक पूरा हुआ। मारवाड़ी बकरी के दुग्धकाल पर गर्मी की अपेक्षा सर्दी का अधिक स्पष्ट प्रभाव देखा गया (तालिका 2)।

पक्के आवास में पाली गई बकरियों का दुग्ध उत्पादन सबसे अधिक दर्ज किया गया क्योंकि सर्दी की ठण्डी रात को पक्के आवास में पशुओं का पूरी तरह से बचाव होता है जबकि खुले आवास में इन पशुओं का ठण्ड से पूरी तरह से बचाव सम्भव नहीं होता है।

व्यवहारजन्म परिवर्तन

अत्यधिक सर्दी ऋतु में सुबह के समय जब उत्तर दिशा से सर्द हवा चलती है तो खुले आवास प्रणाली में पशुओं का आश्रय तलाशने वाला व्यवहार दिखाई दिया। पशुओं ने अपने शरीर के तापमान को बनाए रखने के लिए शरीर के बालों का इस्तेमाल किया, जबकि छप्पर व पक्के आवास के पशु सबसे अधिक बन्द जगह पर बैठे मिले। सर्द हवाएं व वातावरण का कम तापमान पशु की उत्पादकता को अधिक प्रभावित करते हैं क्योंकि हवा पशु की बाहरी सतह से शरीर के तापमान को कम करने की प्रक्रिया को तेज कर देती है।

सारांश

यद्यपि शुष्क क्षेत्र के पशुओं की नस्लें अधिक व न्यून तापमान के प्रतिरोधी हैं फिर भी वे गर्मी व सर्दी की उग्रता से ग्रसित होते हैं। वृक्ष छाया (कुछ सीमाओं सहित) पशुओं के लिए एक सामान्य साधान पाया गया है। शुष्क क्षेत्रों में पशुओं के लिए अर्द्धखुला आवास सबसे उपयुक्त पाया गया जिसमें सामने की तरफ पशुओं के टहलने के लिए जगह भी उपलब्ध होती है।

तालिका 1. विभिन्न आवासों के अलग–अलग ऋतुओं में सूक्ष्म वातावरण

आवास प्रणाली	ग्रीष्म ऋतु (मार्च–जून)			वर्षा ऋतु+पतझड़ (जुलाई–अक्टूबर			सर्द ऋतु (नवम्बर–फरवरी)		
	न्यून ताप	अधिक ताप	सा. आर्द्र.	न्यून ताप	अधिक ताप	सा. आर्द्र.	न्यून ताप	अधिक ताप	सा. आर्द्र.
खुला	23.4	37.6	51.3	23.3	36.2	52.0	11.4	30.2	50.7
छप्पर	23.8	36.8	53.1	24.0	35.2	73.3	12.1	29.0	52.1
पक्का	28.5	35.5	59.0	27.1	34.1	74.0	18.1	27.4	57.0

तालिका 2. विभिन्न आवासीय प्रणालियों में मारवाड़ी बकरी का दुग्ध उत्पादन उपलब्धि

आवास प्रणाली	दुग्ध उत्पादन 90 दिन (लि.)	कुल दुग्ध–काल उत्पादन (लि.)	दुग्धकाल	वसा	अवसार ठोस पदार्थ
खुला आवास	55.3±5.3	76.5±9.6	148.6±15.2	3.04±0.14	7.89±0.08
छप्पर आवास	61.1±4.1	83.8±10.3	126.3±11.1	3.41±0.12	7.97±0.09
पक्का आवास	62.8±6.6	91.7±14.0	143.8±13.8	3.46±0.11	8.12±0.09

चेचक : ऊँटों में एक संक्रामक रोग

डॉ. नागराजन, शैलेश कुमार स्वामी,
डॉ. श्यामसिंह दहिया, गौरव शर्मा एवं पंकज सिंह
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

ऊँटो में चेचक एक संक्रामक रोग है जो कि ऑर्थोपॉक्स, जीनस के पॉक्स विरीडी के अन्तर्गत आने वाले वायरस के द्वारा होता है। आम बोलचाल की भाषा में 'माता' कहलाने वाले इस रोग का वैज्ञानिक नाम 'कैमल पॉक्स' है। यह रोग मुख्यत: मध्यपूर्व एशिया, अफ्रीका और दक्षिणी रूस में पाया जाता है, भारत में इसे सबसे पहले पंजाब में वर्णित किया गया था। मुख्य लक्षणों में 9-13 दिनों की ऊष्मायन अवधि, बुखार, लिम्फ लॉडस का बढ़ना और त्वचा पर धाव होना है।

रोग के लक्षण

इस रोग में सर्वप्रथम 3 से 15 दिन की ऊष्मायन अवधि होती है। वायरस के संक्रमण को तीक्ष्ण एवं व्यापक रूप में विभाजित किया जा सकता है। तीक्ष्ण संक्रमण सामान्यत: तीन साल से कम उम्र के ऊँटों में होता है। इसमें संक्रमित ऊँटों के शरीर में आंतरिक घावों का होने के साथ श्वसन और पाचन नलियों में भी घाव हो जाते हैं। ऊँटों को भूख नहीं लगती एवं गर्दन और पेट पर सूजन आ जाती है। अंतत: पीड़ित ऊँट की द्वितीयक संक्रमण एवं सेप्टीसीनिया से मृत्यु हो जाती है। गर्भवती ऊँटनीयों में इस रोग से गर्भपात भी हो जाता है। इसके विपरीत व्यापक लक्षण सामान्यत: 3 वर्ष के ऊपर ऊँटों में पाया जाता है। इसमें लिम्फनॉड में सुजन, आ जाती है, बुखार आता है एवं पूरे शरीर पर घाव हो जाते हैं। शुरू में घाव त्वचा पर 1 सेन्टीमीटर से छोटे बिना स्त्राव के उभारों के रूप में होते है जो बाद में स्त्राव वाले बड़े आकार में उभारों में बदल जाते हैं। इन बाहरी लक्षणों की शुरूआत सर्वप्रथम सिर, नथुनों, आँखों की पलकों और गर्दन पर होती है, जो धीरे-धीरे पूरे शरीर पर फैल जाते हैं। इन घावों को भरने में 4-6 सप्ताह तक लग जाते हैं।

संचरण के साधक

ऊँटों में चेचक रोग फैलने के मुख्य कारणों में पशु की उम्र, वर्षा ऋतु, पशुओं का झुण्ड में संक्रमित पशुओं के साथ मिलना और पानी पीना आदि हैं। यह वायरस ऊँटों में क्रमश: प्रत्यक्ष सम्पर्क, अप्रत्यक्ष सम्पर्क और वाहक के रूप में मच्छरों और चींचड़ों से तीन प्रकार से फैलता है।

प्रत्यक्ष सम्पर्क बीमार ऊँट की त्वचा की रगड़ से होता है। अप्रत्यक्ष सम्पर्क संक्रमित ऊँटों की पपड़ी सामग्री, लार, प्रभावित ऊँटों के आंख, नाक के स्त्राव एवं दूध से होता है। बरसात के मौसम में ऊँटों पर चीचड़ ज्यादा पाए जाते है, जो इस वायरस के वाहक के रूप में कार्य करते हैं। अत: बरसात के मौसम में यह रोग घातक रूप से प्रकट होता है, जबकि शुष्क मौसम में मामूली रूप से प्रकट होता है। प्रभावित ऊँट से इस रोग का संक्रमण मनुष्य में भी हो सकता है।

रोग की पहचान

ऊँटों में चेचक रोग का निदान उनके लक्षणों पर आधारित है। यद्यपि मूमड़ी और चेचक दोनों के लक्षण समान परिस्थितियों में अविभेदी होते है, अत: इस रोग के निदान का सर्वश्रेष्ठ तरीका संक्रमित पशु के त्वचा के नमूने का संचरण इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी (टेम) से मूल्यांकन है। इस वायरस की अनोखी आकृति होने के कारण इसे आसानी से इस विधि के द्वारा पहचाना जा सकता है। इसके अलावा अन्य पूरक तकनीकें - कोशिका संवर्धन अलगाव, मानक बहुलक श्रंखला अभिक्रिया (पी सी आर), इम्यूनोहिस्टोकेमेस्ट्री इत्यादि है। जो प्रभावी रूप से इस रोग के वायरस के पहचान कर सकती है।

उपचार

ऊँटों में चेचक रोग के प्रकोपों से होने वाले प्रमुख आर्थिक नुकसानों के परिणाम स्वरूप व मनुष्य में इसके संक्रमण की सम्भावनाओं को देखते हुए रोग के प्रसार को रोकने के लिए पशुस्थानिक देशों में रोग निरोधी तरीकों को विकसित करने हेतु अनुसंधान किया जा रहा है। पिछले कुछ वर्षों में इस रोग के सम्भावित इलाज के रूप में एंटी वायरस चिकित्सा पर विचार किया जा रहा है। इसके लिए सिडीफोविर, सी एम एक्स 001 और एस टी 246 प्रभावी उपलब्ध दवाइयाँ है। जो कि इस वायरस के डी एन ए पॉलिगरेज़ का दमन कर देते है एवं संक्रमित ऊँट की मृत्यु को रोक सकते हैं।

बचाव

इस रोग के कारण अर्थव्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। इससे युवा ऊँटों के संख्या में कमी हो जाती है, एवं बड़े ऊँट दूग्ध उत्पादन, मांस उत्पादन और परिवहन के रूप में बेकार हो जाते है। अत: इसके लिए इस रोग से ऊँटों को बचाव के संसाधन उपलब्ध हैं। एक एटेनुटेज टीका यदि 9 माह की उम्र तक के ऊँटों में लगातार दिया जाए तो चेचक से लम्बी अवधि तक ऊँटों को बचाया जा सकता है।

□

ऊँटों में मुमड़ी रोग

डॉ.श्यामसिंह दहिया, डॉ.जी. नागराजन, पंकजसिंह, शैलेशकुमार स्वामी एवं गौरव शर्मा

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

यह एक विषाणु जनित छूत की बीमारी है। जो कि कन्टेजियस इक्थाइमा विषाणु के संक्रमण से होती है। इस रोग का प्रकोप सामान्यत: मानसुन से पहले अथवा बरसात के महीने में देखने को मिलता है। सामान्यत: यह बीमारी दो वर्ष अथवा इससे कम उम्र के टोरडियों में ज्यादा होती है।

लक्षण

इस बीमारी में मुख्यत: मुँह, होठ, नाक, आंख व गले के आस-पास त्वचा में फुन्सियां आनी शुरू हो जाती है। फुन्सिया बाद में फोडे का रूप ले लेती है। मुँह के आस-पास एवं गले में सुजन आ जाती है और दर्द भी रहता है। ऊँट पानी पीने व चारा खाने में तकलीफ महसूस करता है। कभी-कभी फोड़ो में जीवाणुवीय संक्रमण होने से मवाद आने लगती है और घाव का रूप लेने लगता है। इन घावों में कभी-कभी मक्खियाँ अपने अण्डे दे देती है। जिससे इन घावों में कीड़े पड़ जाते है। सामान्य यह बीमारी तीन से छ: सप्ताह में अपने आप ठीक हो जाती है। लेकिन यदि इनमें जीवाणुवीय संक्रमण हो जाए तो ठीक होने में दस सप्ताह तक लग जाते है।

उपचार

फोड़े या घाव को एन्टीसेप्टिक लोशन जैसे पोटेशियम परमेगनेट (0.1%) के घोल अथवा 3% आयोडीन घोल को पानी में मिलाकर धोना चाहिए। घाव पर मक्खियां न बैठे, इसका पूरा ध्यान रखना चाहिए। इसके लिए एन्टीसेप्टिक स्प्रै जैसे आयोडीन, सेमोडीन, टिंक एवं मल्हम जैसे लोरेक्षन हिमेक्स या बीटाडीन लगानी चाहिए। जीवाणुओं से संक्रमित घाव के उपचार के लिए पशु चिकित्सक की सलाह से प्रति जैविक औषधि जैसे स्ट्रेप्टो पेवि सीलिज या टेट्रासाईक्लिन उचित मात्रा में लगानी चाहिए। सुजन कम करने के लिए सुजन निवारक दवा लगानी चाहिए।

बचाव

रोग से ग्रसित ऊँटो को तुरन्त अन्य स्वस्थ ऊँटों से अलग कर देना चाहिए ताकि रोग ग्रसित ऊँट स्वस्थ ऊँटों के सम्पर्क में न आ सके।

- रोग ग्रसित टोरडीयों को माताओं से अलग रखना चाहिए ताकि बीमारी के लक्षण मादाओं के थनों पर न फैले।
- बाडे में स्वच्छता का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए ताकि मक्खियाँ न पनप सके।
- ऊँटों को कंटीले चारों से दूर रखे व कंटीला चारा खाने को न दें।

उष्ट्र दुग्ध उत्पादन हेतु पोषण

डॉ. निर्मला सैनी

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

राजस्थान में देश की 10 प्रतिशत भूमि के साथ 10.75 प्रतिशत पशुधन आबादी है। जल की उपलब्धता मात्र 1 प्रतिशत है। इतने सीमित संसाधनों के पश्चात भी देश का 10.37 प्रतिशत दुग्ध उत्पादन, 3.5 प्रतिशत मटन उत्पादन 30 प्रतिशत ऊन उत्पादन होता है। इस तरह सकल घरेलू उत्पाद में पशुधन योगदान 12 प्रतिशत है। सूखे और अकाल की स्थिति में जीविको-उपार्जन में पशुधन की भागीदारी 60 प्रतिशत तक हो जाती है। इसमें ऊँट की भूमिका मुख्य है। भारत के 78.86 प्रतिशत ऊँट राजस्थान के 11 शुष्क एवम् अर्धशुष्क जोन में पाया जाना इन क्षेत्रों के प्रति ऊँट की अनुकुलता एवम् मानवहित में उपयोगिता सिद्ध करता है। परन्तु दिनोंदिन सिकुडते चारागाह तथा वन विभाग द्वारा भूमि अधिग्रहण, बढती आवासीय संख्या एवम् सिंचित क्षेत्रों ने जहां एक और ऊँटों के लिए खाद्य संकट उत्पन्न कर दिया है वही दूसरी और ग्लोबल वार्मिंग के तहत बढते तापक्रम, अनियमित वर्षा व मौसम चक्र परिवर्तन से ऊँटों के स्वास्थ्य एवम् उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। चारागाह खत्म होने से ऊँटों को चारा एवम् दाने पर रखा जाने लगा है। ऐसे में पशु आहार पर अधिक व्यय होने लगा है। जिससे प्रति पशु उत्पादन खर्चा बढने से लाभ कम होने लगा है। खेती कार्यो एवम् आवागमन में उपयोगिता कम होने के साथ-साथ नये परिवेश में ऊँटों का उपयोग टूरिज्म, दूध एवम् सामान को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाने के कार्यों के कारण अब ऊँट पालक शहरों के समीपस्थ गाँवों में बसने लगे है। पशु आहार की अधिक मांग एवम् उपलब्धता कम होने से उत्पन्न खाद कमी, दाने की उच्च कीमत व लाभ की मात्रा में कमी को देखते हुए पशु पोषण तकनीक द्वारा संसाधनों का समुचित उपयोग एवम् आवश्यकतानुसार पशु को खिलाने पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

पशु के उत्तम स्वास्थ्य, उत्पादन एवम् लाभ के लिए पोषण प्रबंधन महत्वपूर्ण होता है। दुधारू पशु की पोषण आवश्यकता उत्पादन (ब्यांतबाद, मध्य, अन्तिम दुग्ध अवस्था) अवस्था एवम् स्तर (कम, मध्यम, अधिक) पर निर्भर करती है। ग्रामीण स्तर पर ऊँटों को मुख्यतया चराई पर रखा जाता है। चारागाहों में कमी तथा वनस्पति की अल्पता से पशु को आवश्यकता पूर्ण नहीं हो पाती अत: ऊँट पालकों ने अब चराई के साथ-साथ सूखा चारा देना शुरू कर दिया है। बोझा ढोने वाले ऊँट, सवारी एवम् दुधारू ऊँट को सूखा चारा एवम् दाना मिश्रण दिया जाता है।

ब्याँत के तुरन्त बाद दुग्ध उत्पादन शुरू होने से पोषक तत्वों की मांग बढ़ जाती है। परन्तु ऊँटनियों की खाने की क्षमता कम होने से आवश्यक तत्वों की पूर्ति नहीं हो पाती। अत: इस समय अधिक ऊर्जा युक्त आहार देना चाहिये। अधिक दाना देने के कारण रूमेन अम्लता जैसी समस्या उत्पन्न हो जाती है। इस समस्या से बचने के लिए आहार में फाईबर स्तर 18 प्रतिशत (ए. डी. एफ.) और 28 प्रतिशत (एन. डी. एफ.) होना चाहिये। प्रोटीन की आवश्यक मात्रा एवम् अधिक पोषक तत्वों युक्त चारे को खिलाकर आहार खाने की क्षमता को बढ़ाया जा सकता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में ऊँटों को मुख्यतया चराई पर रखा जाता है चारागाह में मानसून घासें, लेग्यूम्स, हर्बल, झाड़ियाँ एवम् पेड़ों की पत्तियाँ मुख्य खाद्य स्त्रोत है। सेमीइन्टेसिव सिस्टम में ऊँटों को चराई के साथ-साथ सूखा चारा भी दिया जाता है। 400 किलोग्राम भार की ऊँटनियों को रख-रखाव के लिए 45 मेगा जूल ऊर्जा एवम् 260 ग्राम पचनीय प्रोटीन की आवश्यकता होती है। प्रति लीटर दूध उत्पादन के लिए 5 मेगा जूल ऊर्जा एवम् 50 ग्राम पचनीय प्रोटीन की आवश्यकता होती है। सिर्फ चराई से एवम् सूखे चारे से दुधारू पशु की सभी पोषक तत्वों की पूर्ति संभव नहीं हो पाती। क्योंकि सूखे चारों में प्रोटीन, ऊर्जा एवम् खनिज लवण कम मात्रा में होते है। अत: दाना एवम् खनिज मिश्रण देना आवश्यक होता है।

ग्रामीण स्तर पर ऊँटों को खिलाने का तरीका सही नहीं है। पशुपालक पशु को दाना, खनिज मिश्रण एवम् हरा चारा नहीं देते हैं। इस तरह पोषण तकनीक सिद्धान्त जैसे सन्तुलित पोषण से लेकर प्रीसाईज फीडिंग तकनीक द्वारा सुधार कर उत्पादन को बढाया जा सकता है।

साधारणतया: पशुपालक पशु को घर पर तैयार दाना देते है। दाने में मुख्यतया: खल (बिनोले/मूंगफली/सोवा/ सरसों) देते हैं या फिर चूरी (ग्वार/मूंग)। इस तरह का दाना असंतुलित होता है। क्योंकि इसमें किसी एक पोषक तत्वों की मात्रा अधिक व दूसरे की कम होती है। समान मात्रा में प्रोटीन (खल

स्त्रोत्र), ऊर्जा (जौ/बाजरा/मक्का) एवम् खनिज लवण व नमक मिलाने से दाना को संतुलित बनाया जा सकता है। ब्याँत के 10-12 सप्ताह बाद पशु के खाने की क्षमता बढ़ जाती है। परन्तु दुग्ध उत्पादन के अधिकतम स्तर पर पहुँचने के कारण पोषक तत्वों की मांग भी अधिक हो जाती है। इस समय उत्पादन मात्रा एवम् शारीरिक भार के अनुसार राशन देना चाहिये। ताकि शारीरिक भार में कमी को कम किया जा सके। ब्याँत के मध्य बाद अवस्था में राशन उत्पादन एवम् शारीरिक भार में कमी की पूर्ति हेतु दिया जाना चाहिये।

ब्याँत पूर्व के 2-3 सप्ताह पोषण की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते है। क्योंकि इसका प्रभाव अगले ब्याँत और दूध उत्पादन पर पड़ता है। इस समय पशु को रोग प्रतिरोधक क्षमता कम होने से रोगग्रसित होने की संभावना बढ़ जाती है। ब्याँत भार एवम् दुग्ध उत्पादन शुरू होने कारण शारीरिक क्रियाओं में तेजी से परिवर्तन होता है। ब्याँत के 1-2 सप्ताह पूर्व राशन देने से रूमेन पेपिला अधिक विकसित हो जाती है। जिससे अवशोषण अधिक होने में सहायता मिलती है। रूमेन में जीवाणु जो कार्बेहाइट्रेट के पाचन में सहायक होते है। दाना शुरू करने से विकसित हो जाते है। आहार में 125 ग्राम से कम वसा होनी चाहिये ताकि रेशे का पाचन कम न हो। साथ ही 14-15 प्रतिशत प्रोटीन होना चाहिये। आहार में 0.6 प्रतिशत कैल्शियम 0.4 प्रतिशत कास्फोरस, विटामिन डी एवम् ई होना चाहिये।

साधारणतया: पशुपालक चारे एवम् दाने को अलग-अलग खिलाते हैं। सूखे चारे के साथ दाना मिलाने एवम् हरा चारे देने से चारे का पाचन अधिक होता है। स्थानीय अपरम्परागत खाद्य स्त्रोतों का प्रयोग कर भी चारे को संतुलित एवम् कम लागत वाला बनाया जा सकता है। इस तरह से ग्रामीण स्तर पर आहार को संतुलित कर उत्पादन बैलेंस की बहुत सम्भावना है।

सुखे चारे की एवम् दाने लगादार बढ़ती कीमत एवम् शहरों में चारे संग्रह स्थान की कमी तथा परिवहन कीमत एवम् उत्पादन पर बढ़ती लागत को देखते हुए पशुपालक अब ''संतुलित आहार'' खिलाने लगे हैं।

कम्पलीट फीड ब्लाक : सभी आहार अवयव जैसे सूखा चारा, दाना मिश्रण, मिनरल एवम् विटामिन, लवण को एक सार मिलाया जाता है दाना कणों को चारे पर चिपकाने हेतु मोलासिस मिलाया जाता है। इस तरह दबाव देकर ईंट का रूप दे दिया जाता है। इस प्रकार पूर्ण मिश्रण राशन से न केवल पशु अधिक खाता है। बल्कि सभी पोषक तत्वों की सही अनुपात एवम् मात्रा में उपलब्धता के कारण वृद्धि, उत्पादन एवम् जनन क्षमता बढ़ जाती है।

कम्पलीट पैलेट राशन : इस तरह के राशन में सूखा चारा 50 प्रतिशत दाना 50 प्रतिशत मिलाकर पलैट तैयार किये जाते हैं। चारा एवम् दाना को ग्राईन्डर से पीसा जाता है तत्पश्चात् मिनरल मिक्सचर एवम् नमक के साथ मिक्सचर द्वारा एकसार किया जाता है। इस तकनीक द्वारा पशु की उम्र एवम् उत्पादन मांग के अनुसार पशु को खिलाना आसान हो जाता है। अपरम्परागत खाद्य स्त्रोतो एवम् स्थानीय तौर पर उपलब्ध खाद्य स्त्रोत को मिलाकर कम लागत का राशन तैयार किया जा सकता है।

विश्व में ऊँटों की संख्या 25.8 मिलीयन है। भारत 0.51 मिलीयन के साथ दसवें स्थान पर है। वैश्विक स्तर पर ऊँट द्वारा 0.3 प्रतिशत (1.7 मिलीयन टन) दूध उत्पादन होता है। गाय, भैंस के बाद ऊँट तीसरा दुधारू पशु है। राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र ने 12वीं पंचवर्षीय योजना में ऊँट को दुधारू पशु के रूप विकसित करने का निर्णय लिया है। अन्य पशु से भिन्न ऊँट की दुग्धकाल अवधि 12-18 महीने होती है। दुग्धकाल एवम् गर्भाधान एक साथ नहीं होती। अधिकतम् दुग्ध उत्पादन 6-7 महीने पर होता है जो लम्बे समय तक स्थिर रहकर धीरे-धीरे कम होता है। जून, जुलाई और अगस्त के महीने में जब अधिकतम तापक्रम व आर्द्रता होती है उस समय ऊँटनियों में दुग्ध उत्पादन अधिक होता है इसके विपरीत अन्य पशु में दुग्ध कम हो जाता है। दुग्ध उत्पादन के लिए अन्य पशु की तुलना में कम पोषण एवम् आवास सुविधा की आवश्यकता होती है।

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वे 3 में कुपोषित बच्चों में राजस्थान पांचवे स्थान पर है। 11.4 प्रतिशत पांच साल के बच्चों का स्वास्थ्य एवम् पोषण स्तर राष्ट्रीय स्तर से कम पाया गया। ऊँट के दूध में वसा 3 प्रतिशत, प्रोटीन 2.6 प्रतिशत, लेक्टोज- 4.2 प्रतिशत होता है। ऊँट के दुग्ध में रक्षात्मक प्रोटीन जैसे लाइसोजाईम्स लेक्टोकेरिन्स होते हैं तथा B Carsin अधिक होता है। गाय के दूध से ग्रसित (एलर्जिक) बच्चों में ऊँट के दुग्ध को काम लिया जा सकता है। ऊँट के दूध में विटामिन सी की मात्रा अधिक होती है। जिंक, लोहा, कापर की मात्रा अधिक होने से प्रतिरोधक क्षमता अधिक होती है। लघु एवम् सीमान्त परिवारों में आसानी से मुफ्त में उपलब्ध दुग्ध कुपोषित बच्चों के लिए लाभप्रद हो सकता है। ऊँट के दूध की पोषकता एवम् औषधीय गुण के प्रति ग्रामीण स्तर पर जागरूकता की आवश्यकता है।

□

ऊँटों की आवास व्यवस्था एवं नवजात बच्चों व ग्याभिन ऊँटनियों की उचित देखभाल

डॉ.बी.एल.चिरानियाँ एवं राधाकृष्ण

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

सम्भवतः चारागाहों के सीमित होते जाने की बदौलत व मशीनीकरण के कारण भारत में ऊँट पशुओं की संख्या काफी तेजी से कम होती जा रही है। ऊँटनियों में प्रजनन करवाए जाने का रूझान भी आम पशु पालक में कम दिखाई देता है। ऐसे में ग्याभिन ऊँटनियों एवम् उनके नवजात बच्चों के लिए बेहतर आवास व्यवस्था एवं देखभाल की आवश्यकता बनी रहती है जिससे नवजात बच्चों की मृत्युदर कम की जाकर अधिक मात्रा में दुग्ध उत्पादन लिया जा सके इस बाबत निम्नांकित बिन्दुओं पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है :–

1. ऊँटों के बाड़े पशु पालक के आवास स्थान से पृथक होने चाहिए।
2. ऊँटों का बाड़ा ऊँचे स्थान पर होना चाहिए ताकि वर्षा का जल एकत्र न हो सके।
3. बाड़े तक आने–जाने का मार्ग साफ व समतल होना चाहिए यदि रास्ता गढ़ायुक्त होगा तो पशु को फ्रैक्चर होने की सम्भावना बनी रहती है।
4. प्रकाश तथा स्वच्छ पानी की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए।
5. ऊँटों के बाड़े की दीवारें ऊँची एवं सुरक्षित होनी चाहिए एवम् दीवारों की दिशा ऐसी हो कि सर्दी गर्मी से पशुओं का बचाव हो सके।
6. ऊँटों के आवास का वातावरण शांत एवम् बैठने की जगह आरामदायक होना चाहिए ताकि ऊँटों को बैठने में किसी प्रकार की तकलीफ़ ना हो।
7. उक्त प्रकार की आवास व्यवस्था कम खर्चीली एवम् स्थानीय स्तर पर उपलब्ध सामग्री से तैयार की जानी चाहिए।
8. बाड़े की नियमित साफ–सफाई की जानी चाहिए।
9. ऊँटों के बाड़े के पास का वातावरण भी साफ–सुथरा एवम् पेड़–पौधों से समुचित रूप से आछादित रहना चाहिए ताकि गर्मी के समय पर्याप्त छाया उपलब्ध हो सके।
10. ऊँटों के आवास को मक्खी–मच्छर आदि से रहित रखा जाना चाहिए ताकि मक्खी–मच्छरों से होने वाली बीमारियों से पशुओं को बचाया जा सके।
11. गर्भित सांडे/नवजात बच्चों एवम् दुधारू पशुओं की अलग–2 आवास व्यवस्था होनी चाहिए।
12. ऊँटों के लिए तैयार किए जाने वाले आवास में समुचित स्थान उपलब्ध होना चाहिए ताकि प्रत्येक पशु ठीक प्रकार से घूम–फिर एवं आराम से बैठ सके।
13. साफ–सफाई नियमित एवम् आवश्यकतानुसार हो वर्ष में एक से दो बार 4''–6'' मल–मूत्र युक्त मिट्टी हटाकर उसके स्थान पर साफ–स्वच्छ रेतीली मिट्टी डलवाई जानी चाहिए।
14. प्रत्येक वर्ष परजीवी, चीचड़, जुएं आदि को खत्म करने के लिए परजीवी नाशक दवा पाउडर का छिड़काव किया जाना चाहिए।
15. ग्याभिन सांडों के लिए भी प्रत्येक वर्ष ब्याने से पूर्व आवास की समुचित साफ–सफाई की जानी चाहिए एवम् परजीवी नाशक दवा छिड़काव उपरान्त स्वच्छ, हवादार, प्रकाश व्यवस्था युक्त स्थान होना चाहिए।

नवजात बच्चों व ग्याभिन सांडों की देखभाल

1. ग्याभिन सांडों की आवास व्यवस्था अन्य सांड़ों व टोरडियों से अलग होनी चाहिए।
2. समूह में सांडों का चारा खाने हेतु मेन्जर (ठाण) में पर्याप्त स्थान उपलब्ध रहना चाहिए।
3. चारा खेली में एक तरफ लवण हेतु स्थान बनाया जाना जरूरी है इससे ऊँटनियाँ आवश्यकतानुसार नमक खा सकती है।
4. ग्याभिन सांडों का अलग समूह बनाकर उनको दाना, चारा शेड्यूल अनुसार खिलाया जाना (दाना 2 किलोग्राम प्रति पशु चारा 10–12 किलोग्राम/प्रति पशु ब्याने के

बाद दुधारू ऊँटनियों को उनकी दूध की मात्रा के अनुसार दाना दिया जाना आवश्यक है।

5. दाना, पशुओं को सुबह के समय बाहर चरने हेतु जाने से पूर्व जाने से पहले तथा सूखा चारा सायंकाल डाला जाना चाहिए जिससे पशुओं को चारा खाने के लिए पर्याप्त समय मिलता रहे।

6. पानी की अलग से व्यवस्था होनी चाहिए, पानी दिन में कम से कम दो बार सुबह–सांय पिलाया जाना चाहिए तथा सप्ताह में एक बार पानी की खेली की सफाई की जानी चाहिए।

7. नवजात बच्चों का अलग समूह बनाकर रखा जाना आवश्यक है, नवजात टोरडियों को 5–10 बार (24 घण्टे में) आवश्यकतानुसार दूध पिलाना चाहिए।

8. नवजात बच्चों को सर्दी–गर्मी से बचाने की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

9. नवजात बच्चों, ग्याभिन सांडों एवम् दुधारू पशुओं के लिए साफ पानी, उच्च गुणवत्तायुक्त चारा व दाना स्वच्छ व हवादार आवास की व्यवस्था होनी आवश्यक है।

10. बीमार पशुओं को तुरंत चिकित्सा प्रदान करवाना महत्वपूर्ण है।

□

राजस्थान में कृषि विज्ञान केन्द्र एवं इनकी उपयोगिता

रामदयाल रैगर एवम् दिनेश मुंजाल
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

पशु पालन व्यवसाय का राज्य की सकल घरेलू उत्पाद में लगभग 10 प्रतिशत का योगदान है। इस क्षेत्र में प्रति इकाई न्यूनतम संभावित निवेश से ग्रामीण स्व–रोजगार की अपार संभावनाएँ हैं। ग्रामीण खुशहाली हेतु पशुधन विकास आवश्यक है। वर्ष 2007 की पशुधन गणना के अनुसार राज्य में 566.63 लाख पशुधन है। राज्य की अर्थव्यवस्था (विशेष तौर पर ग्रामीण अर्थव्यवस्था) में पशुपालन तथा पशुधन का अहम योगदान है। फसल उत्पादन हेतु बड़ी धनराशि का निवेश करना पड़ता है तथा यह मौसम तथा मौसमी दशाओं पर निर्भर रहती है। जबकि पशुपालन तथा पशुधन कम निवेश के साथ ही ज्यादा उपयोगी साबित होता है। अकाल की दशा में तो पशुधन तथा पोल्ट्री और भी ज्यादा उपयोगी साबित हुए हैं। दुग्ध उत्पादन में राज्य का देश में दूसरा स्थान है।

कृषि एवम् पशुपालन क्षेत्र को बढ़ावा देने व किसानों को उन्नत तकनीक एवम् सलाह देने हेतु सरकार ने कृषि विज्ञान केन्द्रों की स्थापना की है। कृषि विज्ञान केन्द्रों (केवीके) की स्थापना का मुख्य उद्देश्य आस–पास के किसानों एवं पशुपालकों को कृषि के विभिन्न क्षेत्रों में प्रशिक्षण देना, कृषि की नई तकनीकों का किसानों के खेतों में प्रदर्शन करना, किसान मेलों, किसान गोष्ठियों एवं अन्य तकनीकी हस्तांतरण कार्यक्रम आयोजित करना है। कृषि विज्ञान केन्द्रों का सामान्यतया निम्नलिखित अधिदेश होता है:–

– क्षेत्र विशिष्ट टिकाऊ, भूमि उपयोग प्रणाली के विकास हेतु 'आन फार्म परीक्षा' औद्योगिकी परिष्करण एवं प्रलेखन में राज्य कृषि एवं पशुपालन विश्वविद्यालयों के विषय विशेषज्ञों/क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्रों के वैज्ञानिकों तथा राज्य प्रसार कार्मिकों के साथ समन्वय स्थापित करना,

– ग्रामीणों में स्वःरोजगार को बढ़ावा देने और उनकी आमदनी में वृद्धि करने के उद्देश्य से "कार्य के माध्यम से प्रशिक्षण" पर बल देते हुए किसानों, कृषिरत महिलाओं तथा ग्रामीण युवाओं के लिए कृषि एवं सम्बद्ध व्यवसाय में दीर्घावधि एवं अल्पावधि वोकेशनल प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन करना,

– कृषि अनुसंधान के नवीनतम प्रगति के साथ संचालन क्षेत्रों में प्रसार कार्मिकों की जानकारी को अद्यतन करने के लिए नियमित आधार पर प्रशिक्षण का आयोजन करना,

– उत्पादन डाटा और फीडबैक जानकारी सृजित करने के लिए विभिन्न फसलों पर अग्रिम पंक्ति प्रदर्शनों का आयोजन करना।

कृषि विज्ञान केन्द्र जिला स्तर पर विज्ञान आधारित ज्ञान और संसाधन केन्द्र के रूप में कार्य करते हैं। ये छोटे किसानों को उनकी भूमि और जोत के हिसाब से तकनीकी सूचना आदि प्रदान करके उनकी सहायता करते हैं। कृषि विज्ञान केन्द्रों के माध्यम से पशुपालकों को पशु नस्ल सुधार व अधिक दूध उत्पादन के लिए गाँवों के युवाओं को प्रशिक्षित किया जाता है।

कृषि विज्ञान केन्द्रों का राज्य सरकार के कृषि, उद्यानिकी, पशुपालन, वन, मृदा एवं पानी संरक्षण, डेयरी तथा विज्ञान एवम् तकनीकी विभागों के साथ ही अन्य सम्बन्धित संस्थानों से भी जुड़ाव रहता है।

राजस्थान में अभी 32 कृषि विज्ञान केन्द्र कार्यरत है। लगभग सभी जिलों में एक–एक कृषि विज्ञान केन्द्र स्थापित किए गए हैं। किसान एवं पशुपालक इन केवीके से संपर्क कर अपनी समस्याओं का निराकरण करवा सकते हैं। किसानों एवं पशुपालकों की सुविधा हेतु कृषि विज्ञान केन्द्रों के पूर्ण पते, टेलिफोन नम्बर एवं ई–मेल पते निम्नलिखित हैं :–

क्र. सं.	नाम व पता	टेलीफोन नम्बर कार्यालय/फैक्स	ई–मेल पता
1.	कार्यक्रम समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र, काजरी कैम्पस, जोधपुर–342003	0291–2741907 0291–2740706	*kvkcazrijodhpur@gmail.com*
2.	कार्यक्रम समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र, काजरी, जोधपुर रोड़ पाली–306401	02932–256771 02932–256098	*cazri_kvkpali@yahoo.co.in*
3.	कार्यक्रम समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र, फतेहपुर शेखावटी, सीकर–332301	01571–222062 01571–232250	*bkvkftr@gmail.com*
4.	कार्यक्रम समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र,, बींछवाल, बीकानेर –334006	0151–2250944 0151–2250336	*kvkbikaner@gmail.com*
5.	कार्यक्रम समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र, केशवाना, जालौर–343001	02973–265648 02973–265648	*srkumawat69@gmail.com*
6.	कार्यक्रम समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र, कुम्हेर, भरतपुर–321001	05644–240691 05644–230346	-
7.	कार्यक्रम समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र, अबुसर पी.एन.नं.4, झुन्झुनूं - 333001	01592–233420 01592–233221	*kvkabusar@gmail.com*
8.	कार्यक्रम समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र, पो.बो. नं. 36, अथियासां, नागौर–341 001	01582–240902 01582–242447	*ks.rathore1960@yahoo.com, arorakvk@rediffmail.com*
9.	कार्यक्रम समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र, एन.एच.नं. 8, तबीजी फार्म, अजमेर–305001	0145–2440023	*gnmathur@gmail.com*
10.	कार्यक्रम समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र, नवगाँव, अलवर–301025	01468–275276	*kvknavgaon@gmail.com*
11.	कार्यक्रम समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र, पो.बॉ. नं. 42, काजरी एरिया जैसलमेर–345001	02992–251359	*kvk.jaisalmer@gmail.com*
12.	कार्यक्रम समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र, करमोडा, सवाई माधोपुर–322001	07462–220870 07462–221430	*kcsharmakvk@yahoo.com*
13.	कार्यक्रम समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र, रीको इण्डिस्ट्रीयल एरिया, धोलपुर–328001	05642–240457	*kvkdholpur@yahoo.in*
14.	कार्यक्रम समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र, खेडला कुर्ड, लालसोट रोड, दौसा–303303	01427–231083 01427–231083	*kvkdausa@gmail.com*
15.	कार्यक्रम समन्वयक, एग्रीकल्चरल रिसर्च स्टेशन, राजस्थान एग्रीकल्चरल युनिवर्सिटी, श्रीगंगानगर (राज.)–335001	0154–2440532	*dsbhati06@rediffmail.com, bssidhusgnr@yahoo.com*
16.	कार्यक्रम समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र, नीयर पीएनबी बैंक, स्टेशन रोड़ हींडौन सिटी, जिला–करौली–322230	07469–209969 07469–231823	-

17.	कार्यक्रम समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र, बोरवाट फार्म, दाहुद रोड, बांसवाड़ा–327001	02962–260069 02962–260069	*kvkbsw9@yahoo.com*
18.	कार्यक्रम समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र, बादल महल, शास्त्री कॉलोनी, डुंगरपुर–314001	02964–265148 02964–231381	-
19.	कार्यक्रम समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र, पो.बॉ.नं. 15, सिरोही–307004	02972–293230 02972–221030	*kvksirohi@yahoo.com*
20.	कार्यक्रम समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र, पो.बॉ. 56, भीलवाड़ा–311001	01482–247850	*kvkbhi@yahoo.com*
21.	कार्यक्रम समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र, पो.ऑफिस–बोरखेरा, बारां रोड़, कोटा – 324001	0744–232672 0744–2323726	*kvk_kota@yahoo.co.in*
22.	कार्यक्रम समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र, रिथोला, चितौडगढ़–312001	01472–241248 01472–241248	*pckvkchittorgarh@yahoo.com, pckvkchittorgarh@gmail.com*
23.	कार्यक्रम समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र, पो.बॉ. 4, नैनवा रोउ, बूंदी–323001	0747–2457162 0747–2457162	*kumarmp03@rediffmail.com*
24.	कार्यक्रम समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र, पो.बॉ. नं.16, कोटा रोड़, झालावाड़–326001	07432–230504	*pckvk_jhalawar@yahoo.com*
25.	कार्यक्रम समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र,धोइंदा राजसमन्द–313342	02952–220626 02952–220626	*bhartikankroli@rediffmail.com*
26.	कार्यक्रम समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र, स्टेशन रोड़, अंता बारां–325502	07457–244862 07457–244862	*kvkanta@rediffmail.com*
27.	कार्यक्रम समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र, पो.बॉ. नं. 29, दांता, बाड़मेर–334001	02982–260123 02982–230041	*kvkbarmer@yahoo.com*
28.	कार्यक्रम समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र, बडगांव, उदयपुर–313001	0294–2451313 0294–2450800	*vbkvk@yahoo.com*
29.	कार्यक्रम समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र, वी/पी तनकारडा, चौमूं जिला–जयपुर–303 702	01423–235133 0141–2332874	*kvkjaipur@yahoo.com*
30.	कार्यक्रम समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र, बनस्थली विद्यापीठ पीओ जिला–टोंक–304002	01438–228333 01438 –228365	*kvktonk@gmail.com*
31.	कार्यक्रम समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र, सरदार शहर, जिला–चुरू–331401	01564–220624 01564–220624	*pckvkchuru@rediffmail.com*
32.	कार्यक्रम समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र, संगरिया जिला–हनुमानगढ़–335063	01499–222702 01499–222050	*kvksangariahmh@gmail.com*

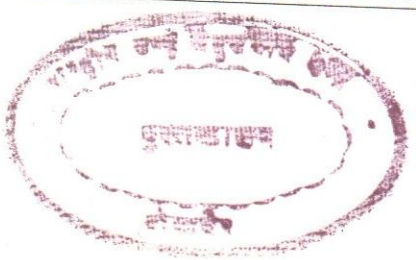

अश्वों की मुख्य बीमारियाँ - लक्षण, निदान एवं उपचार

डॉ. जीतेन्द्र सिंह
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

प्राचीन काल से ही अश्व जो कि एक शक्ति का प्रतीक माना गया है व मानव जाति से जुड़ा रहा है, का अपना महत्व और एक विशेष स्थान रहा है। अश्व प्रजाति के पशु विश्व भर में अपनी ताकत, स्फूर्ति, सुंदरता एवं स्वामीभक्ति के लिए माने जाते हैं। आमतौर पर अश्व शब्द का प्रयोग घोड़े के लिए होता है मगर अश्व परिवार में अन्य पशु जैसे गदर्भ, खच्चर, जेबरा, जिराफ इत्यादि भी सम्मलित हैं। घोड़ा एक बहुत ही संवेदनशील व चुस्त पशु है। इसका उचित रखरखाव कर इसको कई बीमारियों से बचाया जा सकता है। अश्वों की मुख्य बीमारियों के लक्षण, निदान एवं बचाव निम्न प्रकार है :-

टिटेनस

यह अश्वों का एक जानलेवा रोग है जो कि क्लोसट्रीडीयम टेटनाई नामक जीवाणु से होता है। यह जीवाणु हर जगह मिट्टी और पशु के गोबर में पाया जाता है और पशु के शरीर में घाव के रास्ते से प्रवेश कर जाता है। खुरों के घाव से संक्रमण होने की संभावना सबसे ज्यादा होती है। संक्रमण दूषित मिट्टी या गोबर खाने के बाद आमाशय या पेट व आंतों के अल्सर के माध्यम से भी हो सकता है। टिटेनस के जीवाणु विष (टिटेनस विष) बनाते हैं जो कि एक शक्तिशाली न्यूरोविष (neurotoin) है और यह टिटेनस व उसके शास्त्रीय लक्षण का कारण बनता है।

लक्षण : टिटेनस-विष शरीर की मांसपेशियों को नियंत्रित करने वाली तंत्रिकाओं पर असर करता है और मांसपेशियों में जकड़न और ऐंठन का कारण बनता है। शरीर का अकड़ जाना, कानों का सीधा होना, चलने व खान-पान में कठिनाई व पूँछ का सख्त होना पाया जाता है। आँख की तीसरी झिल्ली का बाहर निकल आना इस रोग की विशेष पहचान है। चेहरे की मांसपेशियों की ऐंठन की वजह से पशु एक उत्सुक अभिव्यक्ति को विकसित करता है। रोग से ग्रसित पशु की ऐंठन, आक्षेप और सांस की दिक्कत से मृत्यु हो जाती है।

निदान एवं उपचार : निम्न सभी दवाइयाँ पशु चिकित्सक की सलाह पर ही देवें।

1. टिटेनस ग्रसित पशु को शांत व अँधेरे वाली जगह पर रखना चाहिए और खाने में दलिया देना चाहिए।
2. पेनिसिलिन एंटीबायोटिक दवा की बड़ी खुराक टिटेनस अतिविष के साथ मिलाकर इस्तेमाल करनी चाहिए।
3. यदि पशु ज्यादा उत्तेजित हो तो ट्रैंम्विलाइजर अवश्य देवें।
4. पशु इस रोग से ग्रसित ना हो उसके लिए टिटेनस टोक्सोइड द्वारा पशु का टीकाकरण एक वर्ष में एक या दो बार जरूर करना चाहिए।

ग्लैंडर्स और फार्सी

यह अश्वों का एक जानलेवा रोग है जो कि बर्खोलडेरिया मेलियाई नामक जीवाणु से होता है। यह श्वसन तंत्र और त्वचा को गंभीर रूप से प्रभावित करता है। नाक, ऊधर्व हनु के नीचे की ग्रंथि और फेफड़े जब प्रभावित होते हैं तो यह ग्लैंडर्स कहलाता है व पाँव या शरीर की सतह जब प्रभावित होती है तो यह फार्सी कहलाता है। पशु से यह रोग मनुष्यों को भी हो जाता है। इस रोग के जीवाणु पशु के नाक के स्राव व चमड़ी में उत्पन्न फोड़े में विद्यमान होते हैं। स्वस्थ पशु जब रोग से ग्रसित पशु के संपर्क में आते हैं या दूषित पानी व चारा खाते हैं तो उन्हें भी यह रोग लग जाता है।

लक्षण : पशु के नाक के ऊपरी हिस्से में सूजन, नाक से गाढ़ा व चिपचिपा स्राव आना, नाक श्लेष्म पर छाले होना, खाँसी, तेज बुखार और त्वचा पर गाठें बनना व फूटना इस रोग के मुख्य लक्षण हैं।

निदान एवं उपचार

इस रोग का कोई प्रतिरोधक टीका नहीं है। बीमारी के नियंत्रण हेतु शीघ्र जांच कराकर बीमार पशु को नष्ट करना व उसके निवास स्थान को पूर्णतः जीवाणु रहित करना चाहिए। ग्लैंडर्स व फार्सी एक्ट के तहत जब यह बीमारी घोषित की जाती है तो बीमार अश्व को मारने व मुआवजा देने का प्रावधान है।

स्ट्रेंगल्स

अश्व प्रजाति का यह एक अत्यधिक संक्रामक रोग है जो स्ट्रेप्टोकोकस इक्वाई नामक जीवाणु से होता है। इसमें जीवाणु लिम्फनोड्स को प्रभावित करता है। इस रोग का जीवाणु सीधे संपर्क, दूषित भोजन, पानी, उपकरण या लोगों के हाथों पोशाक के माध्यम से फैलता है। यह जीवाणु घोड़े के शरीर या अनुकूल वातावरण में लंबी अवधि के लिए जीवित रह सकते हैं। स्ट्रेंगल्स रोग से मृत्यु दर कम है (लगभग 2 :) पर अगर घोड़े का सही उपचार ना किया जाये तो यह रोग पशु की जान के लिए घातक सिद्ध हो सकता है। यह बीमारी लगभग 10 से 14 दिनों तक रहती है।

लक्षण : सांस की नली के ऊपरी हिस्से में सूजन आना, जबड़े की लिम्फ ग्रंथियों में प्रायः फोड़े बनना व उनमें मवाद पड़ना, भूख न लगना, तेज बुखार (106^0 से.) इस बीमारी के मुख्य लक्षण हैं।

निदान एवं उपचार : निम्न सभी दवाइयाँ पशु चिकित्सक की सलाह पर ही देवें।

1. बीमारी से ग्रसित पशु को पूरा आराम देना चाहिए। फोड़े में से मवाद निकाल कर बिटाडीन लोशन से साफ कर पट्टी करें।
2. स्ट्रेपटो–पेनिसिलिन, सल्फोनामाइड, ट्राईमिथोप्रिम के टिके लगाये जा सकते हैं।

अश्व संक्रामक रक्ताल्पता

यह अश्वों में होने वाला एक विषाणु जनित रोग है। इस रोग से ग्रसित पशु के खून, दूध, वीर्य, पेशाब में यह विषाणु पाया जाता है और पशु के शरीर में आजीवन बना रहता है। यह बीमारी मक्खी–मच्छर द्वारा एक पशु से दूसरे पशु में फैलती है।

लक्षण : भूख कम लगना, खून की कमी होना, बुखार बार–बार होना, आँखों की झिल्ली का सफेद होना, पेट के निचले हिस्से और पैरों की सूजन, कमजोर नाड़ी, और अनियमित दिल की धड़कन इस रोग के मुख्य लक्षण हैं।

निदान एवं उपचार

इस रोग का कोई प्रतिरोधक टीका नहीं है। बीमारी के नियंत्रण हेतु शीघ्र जांच कराकर बीमार पशु को नष्ट करना चाहिए अन्यथा यह बीमारी दुसरे स्वस्थ पशुओं में भी मक्खी या मच्छर द्वारा फैल सकती है।

अश्व संभोग एजेंथीमा

घोड़ों की एक यौन संक्रामक बीमारी है जो अश्व हर्पिस विषाणु द्वारा होती है, कभी कभी अश्व जननांग चेचक के रूप में भी जानी जाती है। यह बीमारी नर व मादा पशु दोनों को हो सकती है और संभोग से एक पशु से दूसरे पशु में फैलती है।

लक्षण : घोड़ियों में योनि क्षेत्र के आसपास गांठें होना, जननांग क्षेत्र की सूजन, योनि स्राव, अल्सर या पस्चयूल होंठ, नाक या थनों पर देखे जा सकते हैं। घोड़े में लिंग के आसपास गांठें होना, सूजन, तरल पदार्थ से भरे छोटे फफोले इस बीमारी के लक्षण हैं। बीमारी होने पर पशु प्रजनन गतिविधि करने की अनिच्छा व्यक्त करता है।

निदान एवं उपचार : निम्न सभी दवाइयाँ पशु चिकित्सक कि सलाह पर ही देवें।

गांठ या फफोले पर एंटीबायोटिक क्रीम का लेप करें। ग्रसित पशु जब तक पूर्ण ठीक न हो जाये तब तक उसे संभोग न करने दे।

अश्व फ्लू

भारत में इस बीमारी का पता सर्वप्रथम सन् 1987 में चला था। ये अश्व इन्फ्लूएंजा वायरस नामक विषाणु से होती है। अश्व प्रजाति में यह बीमारी किसी भी उम्र में हो सकती है। उम्र में छोटे अश्वों (2 से 6 महीने) में बीमारी के प्रकोप की संभावना ज्यादा होती है। स्वस्थ पशु जब रोग से ग्रसित पशु के संपर्क में आते हैं या दूषित पानी व चारा खाते हैं तो उन्हें भी यह बीमारी हो जाती है। संक्रमण के एक या दो दिनों के बाद नैदानिक लक्षण दिखने शुरू हो जाते हैं।

लक्षण : बुखार, नाक से पानी या रेशा आना, श्वांस लेने में कठिनाई, श्वांस गति तेज होना, निमोनिया,

व खांसी इस बीमारी के मुख्य लक्षण हैं। अन्य लक्षणों में भूख न लगना और सामान्य अवसाद मिलते हैं। नैदानिक लक्षण 7–14 दिनों में खत्म हो जाते हैं, हालांकि खाँसी संक्रमण के बाद तीन सप्ताह से अधिक तक बनी रह सकती है।

निदान एवं उपचार : निम्न सभी दवाइयाँ पशु चिकित्सक कि सलाह पर ही देवें।

यद्यपि इस विषाणु जनित बीमारी के लिए कोई कारगर दवा नहीं है, बीमार पशु को लक्षण के आधार पर दवा देनी चाहिए। एम्पिसिल्लिन, स्ट्रेपटो–पेनिसिलिन, सल्फोनामाइड, ट्राईमिथोप्रिम इत्यादि के टीके दूसरे जीवाणु जनित प्रकोप को रोकने के लिए दिए जा सकते हैं। बुखार को कम करने के लिए पेरासिटामोल व् नोवल्जिन के टीके भी लगाये जा सकते हैं।

राष्ट्रीय अश्व अनुसन्धान केंद्र, हिसार द्वारा इस बीमारी की रोकथाम के लिए एक प्रतिरोधक टीका बनाया गया है।

सर्रा

यह बीमारी ट्रिपेनोसोमा ईवांसी जो की एक रक्त परजीवी है, के कारण होती है। यह परजीवी एक विशेष मक्खी के काटने से फैलता है। ये मक्खियाँ बीमार पशु से रोग पैदा करने वाले परजीवी लेकर स्वस्थ पशु में फैला देती हैं। कई अश्व इस परजीवी के वाहक होते हैं और सर्रा फैलाने के स्रोत बन जाते हैं। अगर समय पर इस बीमारी का इलाज नहीं किया जाता है तो यह जानलेवा भी हो सकती है।

लक्षण : बुखार होना, भूख कम लगना, वजन लगातार कम होना, खून की कमी, आँखों की झिल्ली का सफेद होना, शरीर के निचले हिस्सों में सूजन इस बीमारी के मुख्य लक्षण हैं।

निदान एवं उपचार : निम्न सभी दवाइयाँ पशु चिकित्सक की सलाह पर ही देवें।

इस बीमारी से पूर्व बचाव व इलाज के लिए आईसोमेटामेडियम जो कि 3–4 महीने के लिए पशु को बीमारी से बचाने में सक्षम है या होमीडियम जो की 6–7 हफ्तों तक के लिए पशु को बीमारी से बचाने में सक्षम है, के टीके दिए जा सकते हैं।

अन्य दवाएं जैसे की कुइनापाईरामिन सल्फेट (Quinapyramin sulphate), डिमिनाजिन डाईऐसीचुरेट (Diminazene di&aceturate), नागानोल (Naganol), एंट्रीसाइड सल्फेट (Antrycide sulfate) इत्यादि इलाज के लिए दी जा सकती हैं।

इस बीमारी से बचाव के लिए बीमारी फैलाने वाली मख्खियों की रोकथाम अत्यंत आवश्यक है, इसके लिए अस्तबल में मक्खी मारने वाली दवाओं का छिड़काव करना चाहिए।

अश्व पाईरोपलासमोसिस

यह बीमारी बबेसिया इक्वाई या बबेसिया कैबेलाई नामक रक्त परजीवियों द्वारा होती है। इन परजीवियों को फैलाने में चीचड़ रोगवाहक के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये चीचड़ जब परजीवी से ग्रसित पशु का खून चूसकर दूसरे स्वस्थ पशु का खून चूसते हैं तो पहले पशु के परजीवी दूसरे पशु के रक्त में छोड़ देते हैं और इस तरह दूसरा पशु भी बीमार हो जाता है। बबेसिया परजीवी घोड़े की लाल रक्त कणिकाओं में रहता है और लाल रक्त कणिकाएं टूटने लगती हैं, इस वजह से घोड़े के शरीर में खून की कमी ही जाती है जिससे वह मर जाता है।

लक्षण : तेज बुखार (40 डिग्री सेल्सियस), भूख कम लगना, सफेद या पीली श्लेष्मा झिल्ली, पेशाब लाल, पीला, नारंगी या भूरे रंग का होना मुख्य लक्षण हैं। प्रगतिशील एनीमिया, गर्भवती घोड़ी का गर्भपात होना, तेज दिल की धड़कन, सामान्य कमजोरी, शरीर के अंगों में सूजन, कोलोस्ट्रम सेवन के बाद नवजात की मौत होना अन्य लक्षण हैं।

निदान एवं उपचार : निम्न सभी दवाईयाँ पशु चिकित्सक की सलाह पर ही देवें।

बीमार पशु को इम्मिड़ोकार्ब (Imidocarb), बेरिनिल (Berenil) व औक्सीटेट्रासाईक्लिन्न (OÛytetracycline) इत्यादि इलाज के लिए दी जा सकती हैं।

इस बीमारी से बचाव के लिए बीमारी फैलाने वाले चीचड़ की रोकथाम अत्यंत आवश्यक है, इसके लिए अस्तबल व घोड़े के शरीर पर बुटोक्स इत्यादि दवा का छिड़काव समय–समय पर करना चाहिए।

कॉलिक

पेट दर्द का होना कॉलिक कहलाता है। अश्व प्रजाति में कॉलिक एक मुख्य व्याधि है जो कई कारणों से हो सकती है जिसमे अश्वों के खान–पान (चारादाना) में एकदम बदलाव होना या ज्यादा खा लेना, व्यायाम के तुरंत बाद ज्यादा खा लेना, पेट में अत्यधिक गैस का बनना, कब्ज होना, पेट की आंतो का आपस में फंस जाना, पेट के कीड़े व ज्यादा थकान होना शामिल हैं। कॉलिक होने से पेट में आँतों के जहर का फैलना, शरीर में पानी की कमी होना व दिल का दौरा पड़ना पशु की मौत की वजह बनता है।

लक्षण : पशु का बार–बार उठना–बैठना, लेट जाना, बैठ कर पेट को देखना या काटना, लेट कर टांगे चलाना, खड़े होने पर जोर–जोर से पाँव से मिट्टी खोदना व अपने ही पेट पर लात मारना मुख्य लक्षण हैं। इनके अलावा तेज दिल की धड़कन, सुस्त होना, चारा व पानी न पीना, पेट का फूलना, लीद ना करना इत्यादि अन्य लक्षण हैं।

निदान एवं उपचार : निम्न सभी दवाईयाँ पशु चिकित्सक की सलाह पर ही देवें।

इस व्याधि के निदान के लिए दवा लक्षणों पर आधारित है। ज्यादा पेट दर्द होने पर एट्रोपिन सल्फेट (Atropin sulphate), एनाल्जिन (Analgin), डाईसाईक्लोमिन (Dicyclomin), जाइलेजिन (Xylazin), फिनाइलब्यूटाजोन (Phenylbutazone) इत्यादि दी जा सकती हैं। कब्ज या मल के रास्ते में कुछ फंस जाने की दशा में पैराफिन (liquid Paraffin) या अलसी का तेल (Linseed oil) नेजोगैस्ट्रिक ट्यूब (Nasogastric tube) के माध्यम से दी जाती है।

अश्वों का लंगड़ापन फाउंडर

फाउंडर घोड़ों के पैरों को प्रभावित करने वाली एक आम और बहुत दर्दनाक व्याधि है और लंगड़ापन के रूप में तकनीकी रूप से जानी जाती है। लैमिनें (खुर में पेंडल हड्डी जोड़ने के लिए ऊतक की परतें) की सूजन होने पर पशु में लंगड़ापन आ जाता है। यह चारों पैरों में किसी में भी हो सकती है। इस व्याधि का मुख्य कारण दानें का अधिक मात्रा में खिलाया जाना, छोटी हरी घांस पर ज्यादा चरना व ज्यादा व्यायाम कराना है। इनके अलावा अन्य ज्ञात कारणों में किसी भी संक्रमण के बाद रक्त विषाक्तता, पेट का दर्द या आंत्रशोथ के गंभीर हालात, खुरों के तलवों को आघात, ठंडे पानी का बड़ी मात्रा में सेवन करना, घोड़ी के प्रसव के बाद नाल का लम्बे समय तक न गिरना एक पाँव के खुर पर ज्यादा लम्बे समय तक शरीर का भार रखना शामिल हैं।

लक्षण : यह चारों पैरों में किसी में भी हो सकता है, आम तौर पर हालांकि दोनों अगले पाँव सबसे अधिक प्रभावित होते हैं। घोड़ा चलने के लिए अनिच्छुक हो जाता है और अगर चलाया जाता है तो अक्सर खुरों के सामने से वजन लेने के प्रयास में वापस झुक जाता है। घोड़े को दर्द इतना ज्यादा होता है कि वो अक्सर लेटे रहना पसंद करता है। खुरों की नाड़ी गति में वृद्धि पाई जाती है, खुर के सोल को दबाने पर पशु दर्द दिखाता है, अक्सर घोड़ा शरीर के वजन को एक से दूसरे को पाँव पर स्थानांतरित करता रहता है।

निदान एवं उपचार : जैसे ही घोड़े में लंगड़ेपन होने का संदेह हो तुरंत पशु चिकित्सक की सलाह लें। शुरू में सबसे महत्वपूर्ण है कि किस कारण से पशु में लंगड़ापन आया है उसे सुधारा जाये, इसमें आहार प्रतिबंध या अन्य किसी भी प्रासंगिक कारकों को हटाना शामिल हो सकता है।

घोड़े के पैर का एक्स–रे लिया जा सकता है जिससे निदान में मदद मिलती हैं। सूजन और दर्द कम करने के लिए एनाल्जिन, फिनाइलबिऊटाडेन, आईसोक्ससुप्रिन इत्यादि दवाएं दी जा सकती हैं।

घोड़े को रेतीले जमीन पर रखने में यह उसके चलने–घूमने में अक्सर आरामदायक होता है।

□

टोरडियों में ठीकरिया (स्किन कैंडीडियेसिस)

डॉ. एफ. सी. टूटेजा, डॉ. काशीनाथ, डॉ. बी. एल. चिरानिया एवं डॉ. एन. वी. पाटिल
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

ठीकरिया (स्किन कैंडीडियेसिस) एक वर्ष से कम उम्र वाले टोरडियों में तीव्रता से फैलने वाला संक्रामक फफूंदी त्वचा रोग है। चुंकि इस रोग में जख्म बाह्य त्वचा पर टूटे हुए मिट्टी के बर्तन की ठीकरी के आकार के लगते हैं इसलिए उष्ट्र पालक इसे अपनी भाषा में ठीकरिया कहते हैं।

जब भी यह संक्रमण किसी टोले में होता है तो उस टोले के सभी नवजात टोरडियों में तीव्रता से फैल जाता है। इन्हीं नवजात टोरडियों के साथ रहती व दूध पिलाती मादा ऊंटनियों में यह संक्रमण नहीं होता। यह रोग राजस्थान के शुष्क व अर्धशुष्क दोनों क्षेत्रों में देखने को मिलता है।

इस रोग में जख्म पहले पशु की थुई पर होते हैं तत्पश्चात उदर के दोनों तरफ होते हुए पूरे शरीर पर फैल जाते हैं। जख्म पहले गोलाकर होते हैं तथा 1.0 से. मी. से भी कम माप के होते हैं तत्पश्चात ये लगभग 10 से. मी. से भी अधिक माप के हो जाते हैं व आपस में मिल जाते हैं। जख्म सख्त रेशेदार परत के साथ फुंसीदार व बालरहित होते हैं। जख्मों को खुरचने पर काली व भूरी दुर्गन्धभरी जड़ सहित बालों वाली खुर्चन निकलती है। कुछ समय पश्चात इन टोरडियों में बैचेनी व खुजलाहट होती है जिससे जख्म फट जाते है व इनसे खून निकलने लगता है इससे टोरडिये कमजोर व दुर्बल हो जाते हैं। एक वर्ष की उम्र पर रोग ग्रसित व स्वस्थ टोरडियों के वजन बढ़ोतरी का तुलनात्मक अध्ययन करने पर, रोग ग्रसित टोरडियों के वजन बढ़ोतरी में लगभग 15 प्रतिशत की कमी पाई गई।

जख्मों से त्वचा खुर्चन नमूनों की फफूंद संवर्धन परीक्षण में कैंडीडा ऐल्बिकान्स नामक फफूंद से इस रोग के होने का पता चला।

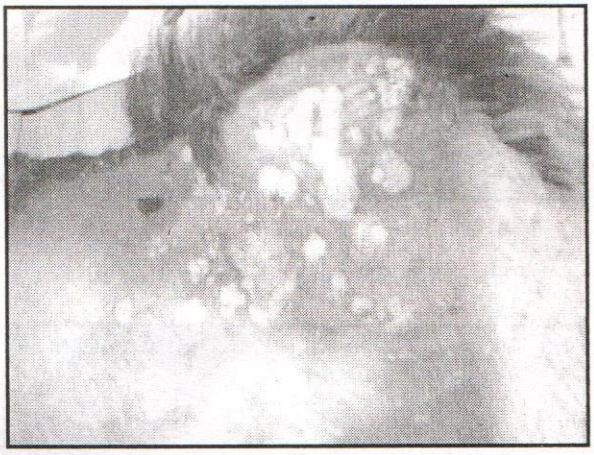

ठीकरिया के शुरुआती जख्म

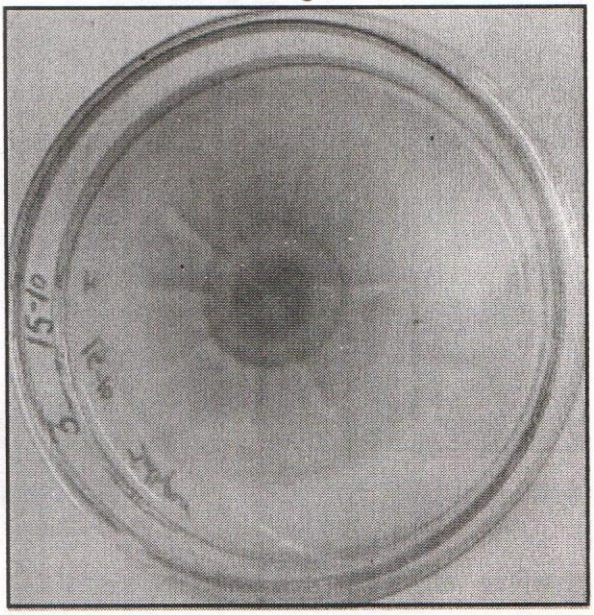

फफूंद संवर्धन परीक्षण में कैंडीडा ऐल्बिकान्स

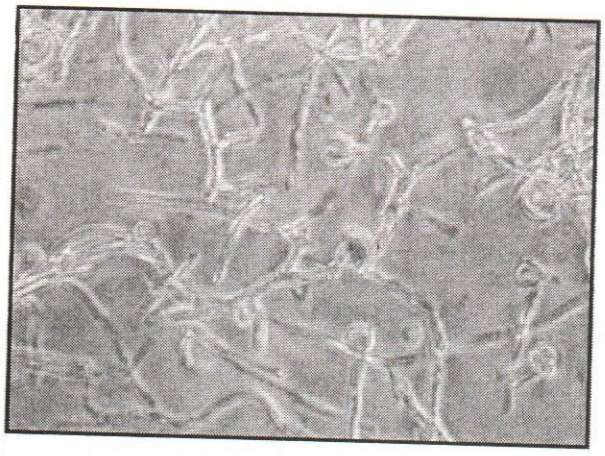

सूक्ष्म दर्शी जाँच में कैंडीडा ऐल्बिकान्स

सूक्ष्म दर्शी जाँच में कैंडीडा ऐल्बिकान्स जर्मट्यूब

ठीकरिया का उपचार

टोरड़ियों में ठीकरिया के उपचार के लिए दवाइयों पर अध्ययन कर निम्नलिखित तीन दवाओं को उपचार के लिए सही पाया गया। उपचार शुरू करने से पहले पूरे शरीर के बाल काट दें। इससे दवा लगाना आसान रहेगा व मात्रा भी कम लगेगी। तत्पश्चात टोरड़ियों में ठीकरिया के जख्म की खुर्चन को अच्छी तरह से रगड़ कर साफ कर दें।

उपचार 1 : साफ पानी में 2.0 प्रतिशत पोटाशियम आयोडाइड का घोल हर दूसरे दिन लगायें। ऐसा करने से ठीकरिया 19 दिन में ठीक हो जाता है।

उपचार 2 : सरसों के तेल में 6.0 प्रतिशत गंधक का पाऊडर मिला कर हर दूसरे दिन लगायें। ऐसा करने से ठीकरिया 15 दिन में ठीक हो जाता है।

उपचार 3 : जख्मों को 10 प्रतिशत सोडियम थायोसल्फेट के घोल से धो दें। तत्पश्चात सरसों के तेल में 6.0 प्रतिशत गंधक का पाऊडर व 3.0 प्रतिशत सेलिसिलिक एसिड मिला कर हर दूसरे दिन लगायें। ऐसा करने से ठीकरिया 14 दिन में ठीक हो जाता है।

ठीकरिया के उपचार में युक्त तीन दवाओं पर अध्ययन के परिणाम

उपचार समूह	उपचार अवधि	जख्म ठीक हो जाना	फफूंद संवर्धन परीक्षण में ठीक हो जाना
उपचार-1	10 बार दवा लगाना (19 दिन)	5/5	5/5
उपचार-2	8 बार दवा लगाना (15 दिन)	5/5	5/5
उपचार-3	7 बार दवा लगाना (14 दिन)	5/5	5/5

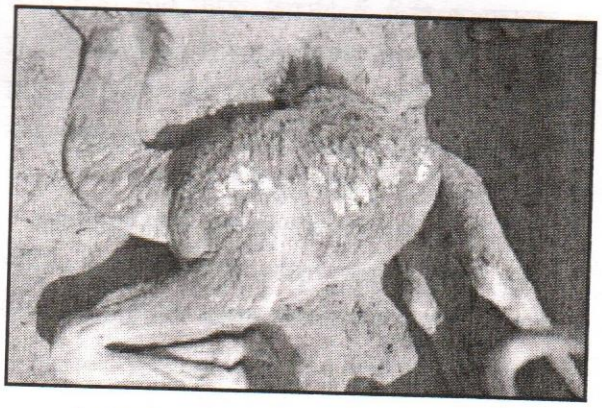

टोरडियों में ठीकरिया के अधिक जख्म

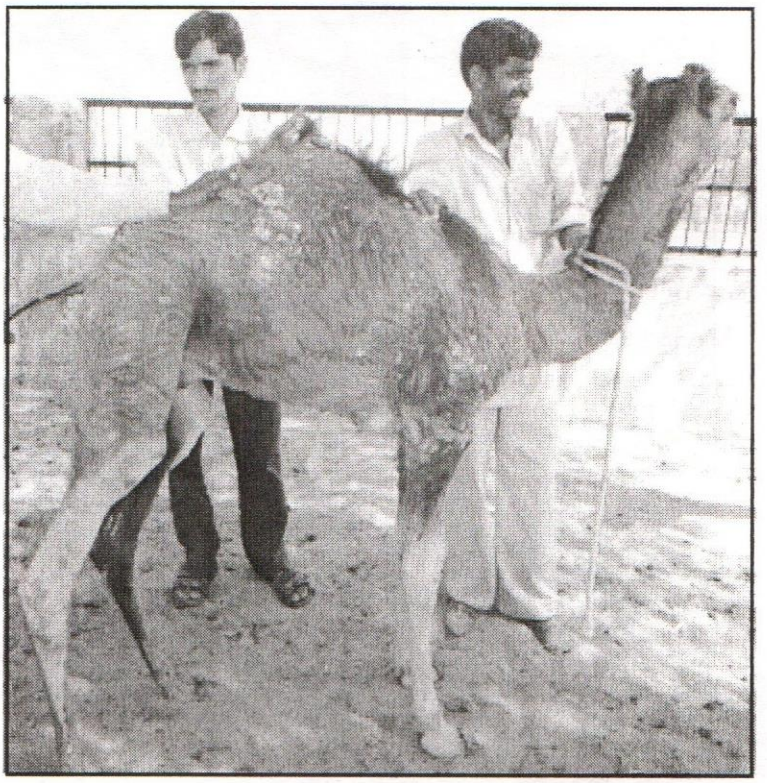

टोरडियों में ठीकरिया के कम जख्म

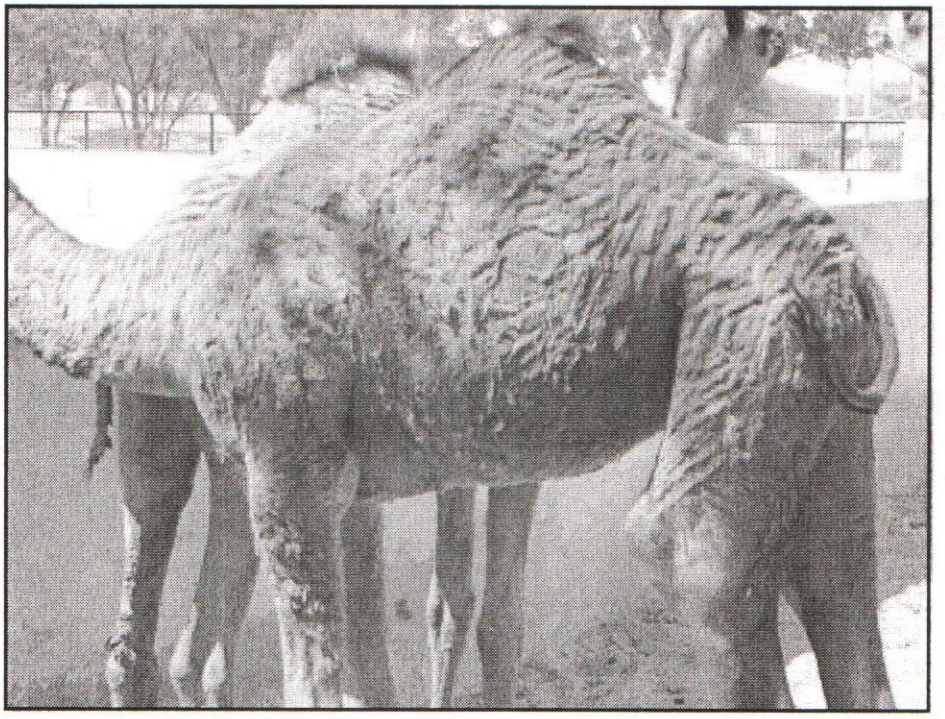

जख्म की खुर्चन साफ करने के बाद

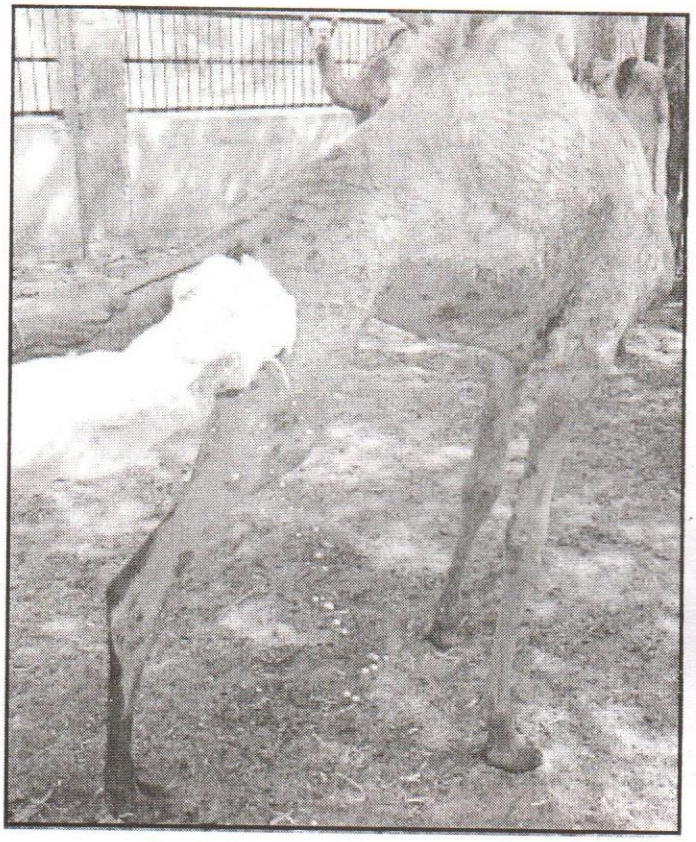

पोटाशियम आयोडाइड लगाते हुए

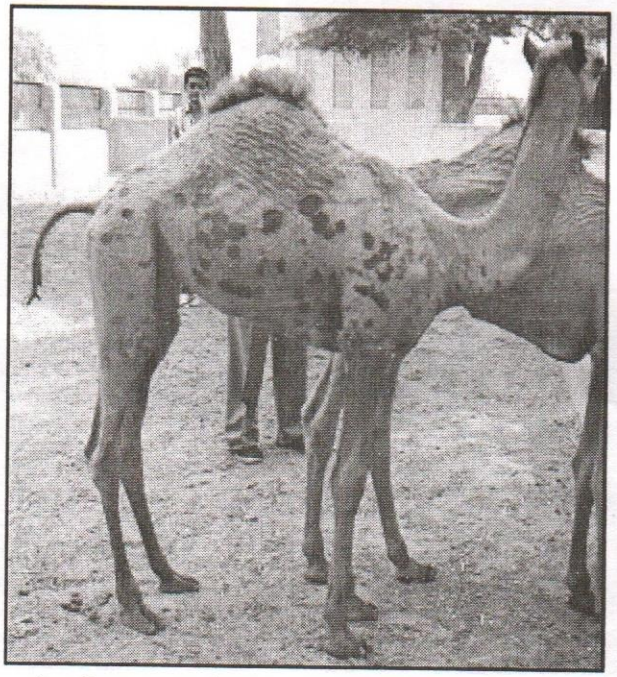

पोटाशियम आयोडाइड लगाने के 3 दिन बाद

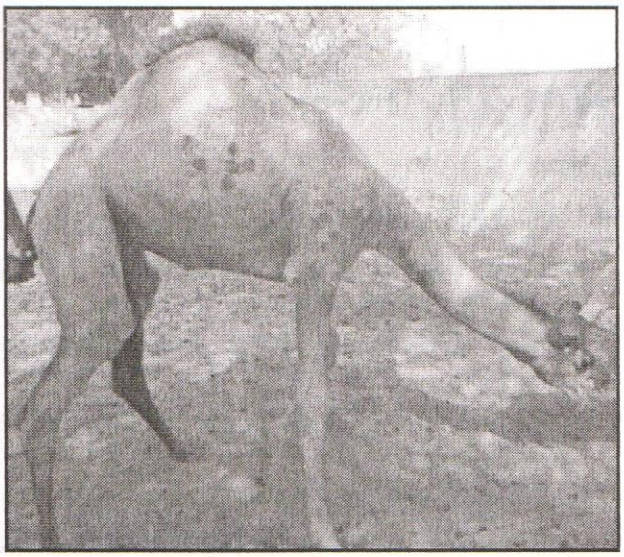

⇦ बिल्कुल ठीक होने से पहले जख्म

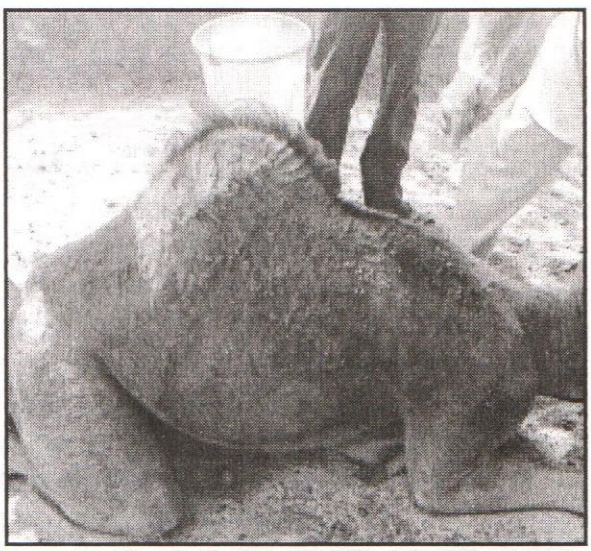

आखिरी बार लगा सरसों का तेल व गंधक ⇨

बिल्कुल स्वस्थ हुआ टोरडिया
⇩

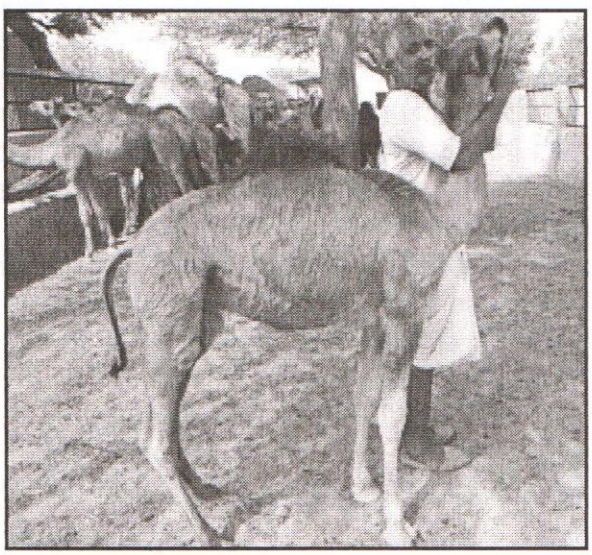

■ तीनो उपचारों में कोई अनचाही प्रक्रिया सामने नहीं आई।

■ प्रत्येक उपचार में लगभग 250 रु. प्रति टोरडिया खर्च हुआ।

■ कुछ टोरडियों में ठीकरिया कुछ समय पश्चात खुद ही ठीक हो जाता है, फिर भी उपचार में देरी न करे, देरी करने से जख्म तो बढेगें ही इसके इलावा ठीकरिया अन्य स्वस्थ टोरडियों में भी फैलेगा।

■ उपचार से पहले उतारी गयी खुर्चन को गहरे गड्ढे में जला दें।

■ ठीकरिया के जख्म कम हो या ज्यादा दवा को पूरे शरीर पर लगायें।

उष्ट्र टोलों का समुचित प्रबन्धन

सुचित्रा सेना एवं फराद फरीदी❖
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

मरुस्थलीय क्षेत्रों में ऊँटों की महत्वपूर्ण भूमिका है। ऊँट पालन मुख्यतः माल परिवहन, कृषि संबंधी जैसे कि दूध, मांस की आवश्यकता के लिए किया जाता है। ऊँट उनके पालकों के लिए प्रतिष्ठा और धन के स्रोत है।

उष्ट्र पालन एशिया और अफ्रीका में अलग–अलग प्रबंधन और उत्पादन प्रथाओं के साथ किया जाता है। भारत वर्ष में उष्ट्र पालन विभिन्न सामाजिक एवम् आर्थिक कारणों से प्रभावित होते हैं। इन कारणों के अलावा झुण्ड संरचना, पानी व भोजन की आवश्यकता भी उष्ट्र पालन व इसकी व्यवस्था को प्रभावित करती है।

शुष्क क्षेत्रों में उष्ट्र प्रबंधन के विभिन्न तरीके अपनाए गए हैं। जैसे कि अरब में राईका अपनी आजीविका के लिए ऊँटों पर पूर्ण रूप से निर्भर रहते हैं। इसलिए वे ऊँटों को बड़ी सावधानी व सम्मान से पालते हैं।

अफ्रीका के कुछ भागों में ऊँटों के साथ–साथ बकरी, भेड़ और गाय का भी पालन किया जाता है। इस मिश्रित पशुधन अर्थव्यवस्था का लाभ भी उनको प्राप्त होता है और केवल ऊँटों पर ही निर्भर नहीं होना पड़ता है।

ऊँटों का प्रबंधन इस बात से प्रभावित होता है कि वह किस उद्देश्य से पाले जाते हैं जैसे कि ऊँटों का झुण्ड प्रबंधन दूध एवं काम के लिए अलग–अलग होता है और यह श्रम की उपलब्धता पर भी निर्भर करता है।

ऊँटों का परिपालन इन विधियों से किया जा सकता है–

1. ऊँटों को हर वर्ष एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में चराई के लिए ले जाएं एवं हर वर्ष इसे दोहराया जाए।
2. सर्दी, गर्मी एवम् बीमारियों से रक्षा के लिए बाड़े का प्रबंध।
3. बाड़े में भोजन एवम् पानी की पर्याप्त आपूर्ति।
4. भूकम्प, सूखा, विभिन्न महामारियों, शिकारियों से सुरक्षा एवम् बचाव के पर्याप्त साधन।
5. ऊँटों के झुण्ड का बेहतर संगठन।
6. बेहतर चारागाह एवम् पानी की आपूर्ति के लिए नवीन क्षेत्रों की ओर पलायन।
7. बेहतर सुरक्षा के लिए बड़े झुण्ड के साथ छोटों को मिलाना।
8. ऊँटों को एक साथ रात में और सुबह विभाजित करना।
9. ग्याभिन मादा ऊँटनियों को नर ऊँटों के झुण्ड से पृथक रखना।
10. ग्याभिन मादा ऊँटनियों में संक्रामक बीमारियों व उनके रोकथाम के उपायों एवम् लक्षणों को जाँच कर नियमित उपचार करना।
11. विषाणु जनित रोगों, फफूंदी जनित रोगों एवम् परजीवी जनित रोगों के खिलाफ टीकाकरण करना।
12. प्रजनन की अवधि में संक्रमण रोकने के लिए स्वच्छता का विशेष ध्यान रखना।
13. विभिन्न क्षय रोगों से ग्रसित ऊँटों को भी अन्य स्वस्थ ऊँटों से पृथक रखना।
14. अन्य संक्रामक बीमारियों एवम् क्षय रोगों से बचाव के लिए संक्रामित दूध, पानी या चारे का सेवन न कराएं।
15. प्रजनन और गर्भावस्था के दौरान अतिरिक्त चारे की व्यवस्था।
16. ऊँटों का विभाजन 4 भागों में किया जाना चाहिए। ऊँटनियों को अपने नवजात बछड़े के साथ, गर्भवती ऊँटनियों को, एवम् सामान उठाने और सवारी के लिए काम काम आने वाले ऊँटों को पृथक से रखना चाहिए।
18. मिश्रित पशुधन जैसे भेड़ एवम् बकरियों का पालन ऊँटों के साथ में लाभदायक है क्योंकि जब ऊँट उत्पादन नहीं कर रहे हो तब ये लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं।
19. बकरियाँ रोग प्रतिरोधक होती है एवम् ऊँटों के साथ इनका काफी अच्छी तरह पालन हो सकता है।
20. इसके अलावा मालिकों के परिवार के बीच ऊँट पालन के लिए श्रम विभाजन।
21. पानी की आपूर्ति के लिए एवम् बेहतर पशु के स्वास्थ्य की देखभाल।
22. ऊँटों के झुण्ड का बेहतर संगठन।

❖अनुसंधान अध्येता

मरूक्षेत्र में चारे हेतु उपयोगी फसलें

रामकुमार एवं महेन्द्र कुमार राव
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकनेर

मरूक्षेत्र की जलवायु भौगोलिक परिस्थितियां एवं भूमि के प्रकार विषम हैं और इसी क्षेत्र में हमारा पशुधन बहुतायत में है। भारत वर्ष का लगभग 25 प्रतिशत क्षेत्र पशुओं के चरने के लिए किसी न किसी प्रकार से काम आता है और केवल 4 प्रतिशत के आस–पास क्षेत्र में देश में चारे की फसलें बीजी जाती है और भविष्य में भी इससे अधिक क्षेत्र में चारे की फसलें बीजने की गुंजाइश भी नहीं है। हमारे पशुधन का भरपूर उपयोग करने के लिए पौष्टिक भरपेट चारा देने के लिए हरा चारा एक अहम स्थान रखता है। इस मरूक्षेत्र में कुछ आवश्यक संसाधन जुटाकर हरा चारा कुछ विशेष घासों/फसलों के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है।

इस क्षेत्र में चारा प्राप्त करने के लिए विशेष रूप से घास जैसे सेवन, ग्रामना, अंजन और धामन इत्यादि के जरिए अच्छा हरा व सूखा दोनों प्रकार के चारे प्राप्त किए जा सकते हैं। अगर आकस्मिक बरसात हो जाए या थोड़ा पानी का प्रबन्ध हो तो इन घासों को फरवरी–मार्च में भी लगाया जा सकता है और 2 महीने बाद लगातार चारा प्राप्त किया जा सकता है। सेवन घास इस मरूक्षेत्र के लिए वरदान सिद्ध हुई है। इस घास से लगभग 19 सालों तक लगातार चारा प्राप्त किया जा सकता है। इसकी मुख्य किस्में काजरी 317, 319, 351, एम30–7, 20–5 और 295 ग्रामना घास भी जल्दी ही चराने/काटने के लिए तैयार हो जाता है और बार–बार काटा जा सकता है। इसकी जड़े बहुत गहराई तक जमीन के अन्दर जाती है और यह रेतीली मिट्टी को उड़ने से रोकने में भी सक्षम है और सूखे को भी सहने की क्षमता रखता है।

अंजन और धामन घास भी बहुत अच्छा पौष्टिक चारा देते हैं। इसकी मुख्य किस्में है काजरी 358, मारवाड़ अंजन–75, इगफरी 3108, मोलोपो, बयालिला। ये किस्में अगस्त से अप्रैल तक हरा चारा दे सकती है। मोडे धामन किस्म भी इस मरूक्षेत्र के लिए बहुत उपयोगी है। अगर थोड़ी बरसात या सिंचाई की इसे सहायता मिल जाए तो इस घास की अन्य किस्में मारवाड़ धामन, काजरी 76, 296, 175, 415 और पूसा पीला अंजन भी अच्छी पैदावार दे सकती है।

एक अन्य घास करड भी जो विशेषकर रेगिस्तान के दबे हुए क्षेत्र है, उनमें काश्त के लिए काफी उपयुक्त है लेकिन इस घास को थोड़ा अधिक वर्षा वाले इलाके में ही काश्त किया जा सकता है इसकी किस्में हैं काजरी–490, 485, इगफरी 495–1 और मारवल 1–8.

सर्दियों में चारे की फसलें

1. बरसीम एवं रिजका : ये हरे चारे की मुख्य फसलें हैं जिनके द्वारा वर्षभर पौष्टिक हरा चारा प्राप्त किया जा सकता है। इनकी बिजाई अक्टूबर–नवम्बर में की जाती है और बिजाई के 45 दिन बाद पहली कटाई ली जा सकती है और फिर हर माह बाद लेकिन इन फसलों की काश्त सिंचाई वाले क्षेत्रों में ही सम्भव है।

2. जई : यह भी अत्यंत महत्वपूर्ण हरा चारा देने वाली फसल है और पूरी सर्दियों में हरा चारा उपलब्ध करवाती है और चारा भी पौष्टिक होता है। इस फसल को अकेले या बरसीम रिजके के साथ मिलाकर बीजा जा सकता है। इसकी बुवाई नवम्बर में कर देनी चाहिए अन्यथा पैदावार कम प्राप्त होगी।

3. एम पी चरी : जायद के समय में मौसमी घासों के अतिरिक्त इसकी काश्त की जा सकती है। जब हरे चारे की विशेषकर कमी रहती है तब यह फसल पशुओं को पर्याप्त हरा चारा उपलब्ध करवाती है।

वन चरागाह स्थापन

गांव की पंचायती भूमि भी चरागाह विकसित करने हेतु काम में ली जा सकती है और पशुओं को हरा चारा उपलब्ध करवा सकती है। आरम्भ में भूमि को आवंटित पौधों रहित करके जुताई करनी चाहिए और फिर चारे वाले पेड़ जैसे खेजड़ी, बबूल, नीम, सिरस और बोरडी इत्यादि का वर्षाकाल में रोपण करके घास इत्यादि की बिजाई की जा सकती है और वर्षा के अभाव में अगर सिंचाई का थोड़ा प्रबन्ध हो सके तो सिंचाई करनी चाहिए और खरपतवारों को निकाल कर लगभग 25 किलो यूरिया खाद प्रति हैक्टेयर का बुरकाव करें। लगभग एक वर्ष तक चारागाह को पशुओं से बचाना चाहिए इसके बाद यह भी गांव के पशुओं के लिए हरा चारा प्राप्त करने का एक स्रोत बन जाएगा।

टोरड़ियों में होने वाली प्रमुख बीमारियां एवं बचाव के उपाय

डॉ. काशी नाथ, डॉ. नरेन्द्र शर्मा एवं डॉ. यू.के. बिस्सा
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

टोराडियों में रोग प्रतिरोधक क्षमता कम होती है अतः संक्रामक बीमारियों से ग्रसित होने का खतरा बहुत ज्यादा होता है। इसलिए जरुरी है कि इनकी देखभाल प्रथम तीन महीने तक अच्छे ढंग से की जाए जिससे कि संक्रामक बीमारियों से ग्रसित होने का खतरा कम हो तथा उनकी मृत्यु दर में भी कमी आ सके। टोराडियो की देखभाल पैदा होने के तुरंत बाद ही शुरू कर देनी चाहिए। बच्चा पैदा होने के बाद निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए –

1. शरीर की सफाई एवं नाभी–नाल को बांधना

अन्य पशुओं की तरह मादा अपने बच्चे को चाटती नहीं है, केवल बार–बार नाक लगाती है और सूंघती है। इसलिए बच्चे के आँख, नाक, मुंह और शरीर से चिकनाहट और झिल्ली को स्वच्छ एवं मुलायम कपड़े से साफ कर देना चाहिए ताकि बच्चे को साँस लेने में तकलीफ न हो। बच्चे के नाभिनाल को चार से पांच सेंटीमीटर की दूरी पर नए ब्लेड से काटकर धागे से कसकर बांध देना चाहिए तथा उस पर बीटाडीन का लेप लगा देना चाहिए ताकि उसमें संक्रमण न हो।

2. बच्चों को खींस पिलाना

बच्चा पैदा होने के बाद मादा का जो प्रथम दूध निकालता है उसे खींस(कोलस्ट्रम) कहते है। खींस में रोग प्रतिरोधक अर्थात एन्टीबोडीज की मात्रा सामान्य दूध से बहुत ज्यादा होता है जो कि इन नवजात बच्चों को संक्रामक बिमारियों से बचाने में सहायक होता है, इसके अलावा खींस में प्रोटीन, शक्कर एवं खनिज तत्व की मात्रा भी दूध की तुलना में ज्यादा होता है जिससे कि बच्चों को भरपूर ताकत मिलती है । इसलिए बच्चे को उनके पैदा होने के एक से दो घंटे के अंदर खींस पीला देनी चाहिए, जिससे कि उनमे बिमारियों से लड़ने की क्षमता उत्पन्न हो जाए।

3. दूसरी ऊँटनियों का खींस या दूध पिलाना

कई बार ऐसा होता है कि या तो ऊँटनी बच्चा देने के बाद मर जाती है या फिर ऊँटनी में खींस या दूध नहीं आता है इसे अगैलेक्सिया भी कहा जाता है। ऐसे में अगर हो सके तो दूसरी ताजा ब्याही ऊँटनी का खींस बच्चे को पिलाना चाहिए, अगर खींस उपलब्ध नहीं हो तो ऊँटनी का दूध थोड़ी–थोड़ी (300–350 मी. ली.) मात्रा में साफ नीपल अर्थात बोतल से दिन में चार से पांच बार पिलाना चाहिए और बच्चों की देखभाल अच्छे ढंग से करनी चाहिए क्योंकि ऐसे बच्चों में रोग प्रतिरोधक क्षमता कम या नहीं होती है।

4. टोराडियों का रखरखाव

टोराडियो के रहने के स्थान की सफाई रोज करनी चाहिए, बच्चे को अधिक सर्दी और अधिक गर्मी से बचाना चाहिए तथा पीने के लिए स्वच्छ पानी देना चाहिए

टोरडियों की प्रमुख बीमारियाँ एवं बचाव के उपाय

1. नाभी नाल में संक्रमण

टोराडियो में एक से दो हप्ते तक नाभी नाल में संक्रमण का खतरा रहता है। इसमे संक्रमण होने पर नाभी नाल के आस पास सूजन आ जाती है और दर्द भी रहता है बाद में यह फोड़े में बदल जाता है और उसमें मवाद भर जाता है। कभी कभी ज्वर भी आ जाता है। यदि समय से इलाज नहीं किया गया तो संक्रमण शरीर में पहुँच जाता है और जानलेवा भी हो सकता है।

बचाव

जन्म के तुरंत बाद बच्चे के नाभी नाल को चार से पांच सेंटीमीटर की दूरी पर नए ब्लेड से काटकर धागे से कसकर बांध दें तथा उस पर बीटाडीन का लेप लगा दें। इसमे संक्रमण होने इसमे भरे मवाद को दबाकर निकल देना चाहिए फिर साफ पानी में लाल

दावा यानी पोटैशियम परमैगनेट डालकर धोना चाहिए और बिटाडीन मलहम का लेप ठीक होने तक लगाना चाहिए।

2. दस्त लगाना

दस्त लगना बच्चों के मृत्यु का एक प्रमुख कारण है । यह सामान्यतय ज्यादा दूध या खींस पीने से होता है (मल तरल दूध जैसा होता है) तथा कभी कभी जीवाणु (इ कोलाई या साल्मोनेलोसिस) या विषाणु (रोटा या कोरोना विषाणु) के संक्रमण से होता है (मल पीला, पानी जैसा और बदबूदार होता है)। इस बीमारी में शरीर का पानी निकल जाता है, टोरडिया कमजोर व सुस्त हो जाता है, दूध चुंगना बंद कर देता है, आँखें धँस जाती है और टोडिया खड़ा नहीं हो पाता है। इलाज नहीं करवाने पर दो तीन दिन में बच्चे की मृत्यु हो जाती है

बचाव

टोराडियो को खींस पिलाते समय यह ध्यान देना चाहिए की बच्चा ज्यादा खींस न पिये, अतिरिक्त खींस को दुह कर निकाल देना चाहिए। दस्त लगाने पर खींस या दूध थोड़ी–थोड़ी मात्रा में दिन में चार से पांच बार पिलाएं। ओआरएस का घोल या साफ उबले आधा लीटर पानी को ठंडाकर उसमे चीनी और नमक का घोल बनाकर बच्चे को पिलायें, दूसरे दिन ठीक न होने पर पशु चिकित्सक की सलाह लेनी चाहिए।

3. कब्ज

टोराडियो में कभी कभी कब्ज हो जाता है। कब्ज होने पर बच्चा मल त्याग नहीं करता है। दूध पीना भी बंद कर देता है एवं सुस्त बैठा रहता है।

बचाव

कब्ज होने पर बच्चे को तरल पैराफिन या खाद्य तेल 100 से 300 मिली. पिला दें।

4. सर्दी, खांसी एवं न्युमोनिया

उँटनियाँ अधिकतर सर्द ऋतु के जनवरी या फरवरी माह में ब्याती हैं इसलिए टोराडियों को सर्दी लगने, खांसी और न्युमोनिया होने की संभावना ज्यादा होती है। सर्दी लगने पर नाक से पानी आने लगता है

खांसी

आरंभ में टोराडियों को सूखी खांसी अथवा धांसी आती है और साँस लेने में कठिनाई होती है तथा गले के नीचे सायं सायं की आवाज अति है। यदि इसका इलाज नहीं किया गया तो यह न्युमोनिया का रूप ले लेता है।

न्युमोनिया

इस बीमारी में हर समय ज्वर रहता है, पीड़ित बच्चा कांपता है, फेफड़े तथा पसलियों में दर्द के कारण कराहता है, साँस लेने में कठिनाई होती है, आंखें लाल हो जाती है। इलाज नहीं करवाने पर तीन से चार दिन में बच्चे की मृत्यु हो जाती है

बचाव

सर्दी से बचाने के लिए टोराडियो को घर के अंदर या ऐसी जगह पर रख चाहिए जहाँ ठंडी हवा न लगे, उसके शरीर पर रात को टाट या बोरी बांध देनी चाहिए। खांसी या न्युमोनिया होने पर टोराडियो को इंजेक्सन एविल 2 मी. ली., सेफोटकसिम 500 मिलीग्राम पांच दिन तक तथा काफडान पावडर 10 ग्राम दिन में दो बार सात दिन तक पिलानी चाहिए या पशु चिकित्सक से सलाह लेनी चाहिए।

5. कोनटेजियस एकथाईमा (मुमड़ी की बीमारी)

यह बीमारी मुख्यतः एक साल तक के टोरड़ियो में पायोरोपोक्स विषाणु के संक्रमण से होता है। यह एक छूत की बीमारी है और एक टोरड़ियों से दूसरे टोरड़ियों में बहुत तेजी से फैलती है। इस बीमारी में मुंह और होठ के चारों तरफ फोड़ा हो जाता है बाद में इसमें जीवाणु संक्रमण हो जाने से मवाद आने लगता है। टोडिया चारा खाना और दूध चुंगना बंद कर देता है और कमजोर हो जाता है।

बचाव

सर्वप्रथम जिन टोराडियो में ये बीमारी दिखे उनको दूसरे बच्चों से अलग कर दें घाव को साफ पानी में लाल दावा यानी पोटैशियम परमैगनेट डालकर अच्छे से रोज धोएँ और उस पर बीटाडीन या कोई भी एंटीसेप्टिक मलहम ठीक होने तक लगाएं।

□

कृषि कार्यों में कम्प्यूटर का उपयोग

दिनेश मुंजाल व राम दयाल रैगर
राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकनेर

कम्प्यूटर का कृषि के विभिन्न कार्यों में प्रयोग में आना एक आश्चर्यजनक सत्य है। कृषि अनुसंधान में नवीनतम प्रौद्योगिकी के समावेश से कृषि कार्यों में आशातीत सफलता प्राप्त हो रही है। कम्प्यूटर की मदद से किसी भी नतीजे पर पहुँचना काफी सरल हो गया है, पिछले रिकार्ड, मौसम, पानी, मिट्टी की स्थिति से इस साल की फसल के पूर्वानुमान लगाने में कम्प्यूटर की काफी अहम भूमिका सिद्ध हो रही है। साथ ही कम्प्यूटर द्वारा आने वाले दिनों में मौसम व बारिश की स्थिति का पूर्वानुमान भी आसानी से लगाया जा सकता है।

कम्प्यूटर द्वारा वह यह भी अनुमान लगाने में सक्षम हो जाता है कि उत्तम किस्म का बीज कौनसा है व यह बीज कहां मिलेगा, उसकी कीमत क्या है ?

उसको लगाने का सही मौसम व तरीका कौनसा है ?

उसको लगाने के बाद उसकी देखभाल कैसे करनी है?

कब–कब उसे खाद व कीटाणुनाशक दवाइयों द्वारा उपचारित करना है?

पौधे में कौनसी बीमारी हो सकती है ? यदि हो गई है तो उसके हेतु कौनसी दवाई उपयोगी सिद्ध होगी। फसल को कौन से वायरस नुकसान पहुँचाते हैं, उनके हेतु वायरस निरोधी उपचार क्या है? इसकी नवीनतम जानकारी कम्प्यूटर द्वारा तुरंत देखकर प्रयोग में लाई जा सकती है।

कम्प्यूटर द्वारा फसल पर नियन्त्रण किया जा सकता है। कृषक कीट–पतंगों से सम्भावित खतरों को देखते हुए नवीनतम कृषि उपकरण व दवाइयों की उपलब्धता की जानकारी ले सकता है, तथा कीट पतंगों के हमले से पूर्व ही उनसे निपटने की तैयारी कर सकता है।

कृषक आज कम्प्यूटर की मदद से संसार के विभिन्न देशों व व्यक्तियों से सीधा संवाद करने में सक्षम है तथा कृषि में नवीनतम पद्धति व विभिन्न ताजातरीन हालात से वह तुरन्त वाकिफ हो जाता है।

आज कम्प्यूटर में इतनी तरक्की हो गई है कि कृषक अपने दोस्तों, मित्रों व कृषि वैज्ञानिकों से सीधे संवाद स्थापित कर अपने कृषि प्रबन्धन में मदद प्राप्त कर सकता है।

आज विभिन्न सोशल साईट व साझा मंच द्वारा कृषक आपस में एक–दूसरे के ज्ञान व विचार का साझा कर सकते हैं व किसी आपदा की स्थिति में तुरंत ही किसी नतीजे पर पहुँच कर निर्णय करने में सक्षम होते हैं।

सरकार द्वारा भी कृषकों की मदद के लिए विभिन्न योजनाएँ समय–समय पर चलाई जाती है। कृषक कम्प्यूटर की मदद से उन सरकारी योजनाओं के बारे में जानकारी ले सकता है तथा उन योजनाओं हेतु अनुदान व सरकारी सहायता प्राप्त कर सकता है।

सरकार द्वारा कृषि कार्यों में बिजली व पानी की उपलब्धता व नवीनतम जानकारी भी कम्प्यूटर द्वारा जानकर अपने कृषि कार्यों को उचित समय विशेष पर प्रयोग कर इसका लाभ उठा सकता है।

कृषि कार्यों के लिए मौसम की जानकारी व भौगोलिक सूचना प्रणाली (जी.आई.एस.) द्वारा अद्यतन जानकारी कृषकों को मिल जाती है।

जी.आई.एस. द्वारा कृषक की भूमि का आकलन आसानी से किया जा सकता है। इसमें नवीनतम उपकरणों द्वारा कृषक की भूमि की उर्वरक क्षमता, पानी की उपलब्धता व निकासी क्षमता, मिट्टी की उपजाऊ (न्यूट्रीएन्ट) क्षमता की जानकारी तुरन्त ही मिल जाती है। सरकार की विभिन्न कृषि सम्बन्धित वेबसाईट इस तरह की जानकारी मुफ्त में ही प्रदान करती है।

कृषक जी.पी.एस. द्वारा इलेक्ट्रोनिक नक्शे व

जगह विशेष की स्थिति की जानकारी भी कम्प्यूटर द्वारा प्राप्त कर सकते हैं।

जी.पी.एस. द्वारा कृषि उपकरणों की मदद से फसल की ताजा स्थिति व फसल की बढ़ोतरी पर निगरानी रख सकते हैं।

कृषि कार्यों में कम्प्यूटर पर आधारित नवीनतम उपकरण व ताजातरीन शोध के बारे में जानकारी रखकर कृषि फसलों में काफी सरलता प्राप्त कर भरपूर फायदा लिया जा सकता है।

कृषक द्वारा अपनी फसल उत्पादन के बाद , उसकी लागत बाजार भाव व कौनसी जगह उसे फसल की सही कीमत मिल सकती है कि जानकारी भी घर बैठे ले सकता है तथा उचित समय पर अधिकतम मूल्य में अपनी फसल का निस्तारण कर सकता है।

कम्प्यूटर द्वारा कृषि जनित डाटा रिकार्ड करना, उसका विश्लेषण करना, तेज गति से डाटा का निस्तारण कर उसे उपयोगी सूचना में बदलना व उस सूचना द्वारा, बीज की मात्रा, उपलब्धता व लगाने की जानकारी का विश्लेषण कम्प्यूटर द्वारा तुरंत सम्भव है।

अतः यह कहा जा सकता है कि कम्प्यूटर का कृषि में प्रयोग करके कृषक अपनी फसलों व मौसम की जानकारी व आधुनिकतम उपकरणों को प्रयोग में लाकर अधिकतम व अच्छी फसल ले कर देश व समाज के विकास में भागीदार बन रहा है।

□

संपादन मण्डल

डॉ. एफ.सी. टुटेजा, डॉ. सज्जन सिंह
रामदयाल रैगर, नेमीचन्द बारासा
डॉ. राकेशकुमार पूनियाँ

Printed By : Surya Prakashan Mandir, BIKANER